योग-साधन-माला वर्ष १ पुष्प ६—

ओ३म्

॥ प्राणायाम विधि ॥

"प्राणः स्वदेहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम्"।

लेखक और प्रकाशक—

श्री स्वामी अभयानन्द सरस्वती

योगमण्डल 'गुरुकुल'

काशी

शिवशंकर मिश्र द्वारा भारत-प्रेस, काशी में मुद्रित।

सम्वत् १९८० वै०

मूल्य १=) आ०

विषय सूची

वर्ष समाप्ति की विज्ञप्ति

(१) परमात्मानुग्रह से योग-साधन-माला का प्रथम वर्ष समाप्त हुआ। प्रथम वर्षमें उक्त माला के १२ पुष्प प्रत्येक ३२ पृष्ठ के हिसाब से ३८४ पृ० में देने की सूचना थी परन्तु प्रत्येक विषय को यथा संभव स्पष्ट करने के कारण केवल ६ पुष्प ही ३८४ पृ० में पूर्ण किया गया।

(२) पूर्व सूचनानुसार शेष ६ पुष्प ३८४ पृ० में द्वितीय वर्ष के सहायक तथा ग्राहकों के समीप भेजा जावेगा।

(३) जिन्हें आगामी द्वि० वर्षका ग्राहक रहना अभीष्ट न हो उन्हें इस अन्तिम छठा पुष्प 'प्राणायाम विधि' प्राप्त करने पर दो सप्ताह के अन्तरगत अपनेविचार को निम्न पतेपर भेज देना चाहिये, अन्यथा ग्राहक समझ कर उन के समीप ७ वां पुष्प 'ब्रह्मानन्द' अग्रिम मूल्य प्राप्त्यर्थ वी० पी० द्वारा भेजा जावेगा।

मंत्री, योगमण्डल गुरुकुल,
काशी।

॥ ओ३म् तत्सत् ॥

भूमिका ।

प्रार्थना

ओ३म्—प्राणश्चमेऽपानश्चमे व्यानश्चमेऽसु-श्चमे चित्तंचमऽआधीतंचमे वाक्चमे मनश्चमे चक्षुश्चमे श्रोत्रंचमे दक्षश्चमे बलंचमे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥

यजु० अ० १८ मं० २

हे प्राणपते जगदात्मन् आप की कृपा से मेरा हृदयस्थ जीवन मूल और कण्ठ देश में रहने वाला (प्राणवायु तथा उदान वायु) मेरा नाभि से नीचे को जाने और नाभि में ठहरने वाला पवन (अपान वायु), मेरे शरीर की सन्धियों में व्याप्त और धनञ्जय जो शरीर के रुधिर आदि को बढ़ाता है, वह पवन (व्यान वायु और धनञ्जय वायु), मेरा नाम आदि प्राण का भेद और अन्य पवन, मेरी स्मृति अर्थात् सुधि रहनी और बुद्धि, मेरा अच्छे प्रकार किया हुआ निश्चित ज्ञान और रक्षा किया हुआ विषय, मेरी वाणी और सुनना, मेरी संकल्प बिकल्प रूप अन्तःकरण की वृत्ति और अहंकार वृत्ति, मेरा चक्षु जिससे कि मैं देखता हूँ वह नेत्र और प्रत्यक्ष प्रमाण, मेरा कान, जिससे कि मैं सुनता हूँ और प्रत्येक विषय पर वेद का प्रमाण मेरी चतुराई और तत्काल भान होना, तथा मेरा बल और पराक्रम 'ये सब' धर्म के अनुष्ठान से स

ऋचं वाचं प्रपद्ये मनोयजुः प्रपद्ये साम प्राणं प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये। वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥ यजु० ३६ । १ ॥

हे विज्ञान स्वरूप परमात्मन् ! आप की कृपा से ऋग्वेदादि ज्ञान युक्त होके उसका वक्ता होऊँ तथा यजुर्वेदाभिप्रायार्थ सहित सत्यार्थ मनन युक्त मन को प्राप्त होऊँ ऐसे ही सामवेदार्थ निश्चय निदिध्यासन सहित प्राण को सदैव प्राप्त होऊँ "वागोजः" वाग्बल, वक्तृत्वबल, मनो विज्ञान बल मुझको आप देवें अन्तर्यामी की कृपा से मैं यथावत् प्राप्त होऊँ "सहौजः" नैरोग्य दृढ़त्वादि गुण युक्त को मैं आप के अनुग्रह से सदैव प्राप्त होऊँ "मयि, प्राणा पानौ" हे सर्व जन बल शरीर जीवनाधार ! प्राण (जिससे कि ऊर्ध्व चेष्टा होती है) और अपान (अर्थात् जिससे नीचे की चेष्टा होती है) ये दोनों मेरे शरीर में सब इन्द्रिय सब धातुओं की शुद्धि करने तथा नैरोग्य बल-पुष्टि सरल गति कराने और मर्म स्थलों की रक्षा करने वाले हों उनके अनुकूल प्राणादि को प्राप्त होके आप की कृपा से हे ईश्वर ! सदैव सुख युक्त आप की आज्ञा और उपासना में तत्पर रहूँ ॥ अर्थात् मैं अपनी वाक् शक्ति, मनन शक्ति, प्राण शक्ति और श्रवण शक्ति को क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में पूर्णतया लगाता हूँ। जिससे मेरे अन्दर वाणी का बल, मन का सामर्थ्य और प्राण का प्रभाव स्थिर होकर बढ़े।

वाचकवृन्द ! उक्त प्रार्थना मंत्रमें वाणी, मन, प्राण और श्रवण इन चारों को ऋग्, यजु, साम और अथर्व चत्वारि वेदों में लगाने का तात्पर्य यह है कि सद्विचार, सत्कर्म और सदुपासना ये तीन क्रमशः ऋग्यजुः साम के कार्य होने के पश्चात् दिव्य दृष्टि खुल सकती है, और सच्चा ज्ञान प्राप्त हो सकता है:-

(१) 'ऋग्वेद'—यह 'प्रशंसावेद' है इसके द्वारा स्तुति, वाणी, सुभाषण और सद्विचार की प्राप्ति करनेका उपदेश ग्रहण करना चाहिये।

(२) "यजुर्वेद"—यह 'कर्मवेद' है इस वेद से यज्ञ, मन, अनुष्ठान और सत्कर्म की प्राप्ति करना।

(३) "सामवेद"—यह 'उपासनावेद' है इसके द्वारा उपासना, प्राण, जीवन और सदुपासना की प्राप्ति करना।

(४) "अथर्ववेद"—इसका नाम 'ब्रह्मवेद' है इसके द्वारा ज्ञान, श्रवण, स्थिरता और दिव्यदृष्टि की प्राप्ति करना चाहिये।

अर्थात् ईश्वर की स्तुति (प्रशंसा) से वाणी की शुद्धि, वाणी की शुद्धि से सुभाषण और सुभाषण से सद्विचार की प्राप्ति। सद्विचार से यज्ञ (कर्म), यज्ञ से मन की शुद्धि, मन की शुद्धि से अनुष्ठान (शुभसंकल्प) और अनुष्ठान से सत्कर्म की प्राप्ति, सत्कर्म से उपासना (भक्ति), उपासनासे प्राण की शुद्धि, प्राण की शुद्धि से जीवन (आत्मबल) आत्मबलसे सदुपासना (उत्तम उपासना) की प्राप्ति, सदुपासना से ज्ञान (ब्रह्म-ज्ञान), ब्रह्मज्ञान से श्रवण (आत्मा) की शुद्धि आत्मशुद्धिसे स्थिरता और स्थिरता से दिव्यदृष्टि की प्राप्ति होती है। दिव्य दृष्टि से ब्रह्म का दर्शन होकर कैवल्य मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह वह कैवल्य है जिसको पाकर योगी कृतकृत्य हो जाता है, इस कैवल्य का एक मात्र योगही साधन है, इसको प्राप्त हो कर योगी इस प्रकार से ब्रह्मानन्द में निमग्न होता है कि फिर उसको दुःख का लेश भी नहीं रहता, फिर उसको एक मात्र परमात्मा ही पूर्ण प्रतीत होता है जैसा किः—

"पूर्णमदःपूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते" (बृहदा० ५। १। १

इस उपनिषद्वाक्य में वर्णन किया गया है कि उसका दृश्य एक मात्र पूर्ण होता है और उस पूर्ण की पूर्णता से इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को पूर्ण समझता है, उस पूर्ण के पूर्ण भाव को धारण करके योगी इस सर्वोपरि कैवल्य भाव को धारण करता है। कैवल्य की प्राप्ति का साधन ऊपर कह आए हैं कि एक मात्र योग ही साधन है योग साधन की विशेष विधि 'योग मण्डल काशी द्वारा प्रकाशित योग साधन माला के तृतीय पुष्प "आत्मयोग" नामक पुस्तकमें अष्टाङ्गयोग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारण, ध्यान और समाधि) की क्रियाओं का यथाक्रम वर्णन किया हुआ है। परन्तु योग विद्या का जो प्रधान विषय प्राणायाम है जिससे आगे की धारणा ध्यान, समाधि (संयम) नामक सम्पूर्ण मुख्य क्रियायें सिद्ध होजाने पर साक्षात् परमात्मा के साथ योग प्राप्त होता है तथा जीव मुक्ति में निःश्रेयस अमृत सुख और आनन्द भोगता है। उस प्राणायाम से आध्यात्मिक सम्बन्ध के अतिरिक्त शारीरिक और मानसिक शक्तियों में जो अद्भुत् विकाशता प्राप्त होती है उसके सम्बन्ध में परमात्मानुग्रह से योगसाधन माला के षष्ठम् पुष्पमें विशेष कर १ आसन विधि, २ आसनचिकित्सा, ३ प्राणविद्या, ४ प्राणायाम विधि ५ आत्म परीक्षण, ६ आत्मसंरक्षण, तत्पश्चात् ७ वैदिक चिकित्सा के विषयमें यथावसर योग जिज्ञासुओं के हितार्थ क्रमशः वर्णन करूंगा। जिस से योगाभिलाषी जन आलस्य को त्याग के अभ्यासी बनें यह मेरी परमात्मा से प्रार्थना है सो परमेश्वर अवश्य पूरी करेगा। शमित्योम् ॥

अभयानन्द सरस्वती।

उपक्रम

* आसन और प्राणायाम का सम्बन्ध

योगाचार्य महर्षि पतञ्जलि जीके योग सूत्रोंसे आसन और प्राणायाम का घनिष्ट सम्बन्ध प्रतीत होता है जिस प्रकार यम का नियम के साथ, प्रत्याहार के साथ धारण का, ध्यान के साथ समाधि का घनिष्ट सम्बन्ध है। बिना आसन स्थिर हुए प्राणायाम किसी प्रकार फलप्रद नहीं हो सकता। आसन और प्राणायाम इन दोनों से शारीरिक और मानसिक मलों की शुद्धि होकर उनकी शक्तियें भी विकाशिता को प्राप्त होती हैं इन दोनों की क्रिया राजयोग और हठयोग दोनों से सम्बन्ध रखती हैं। जिन के शरीर दृढ़ और आरोग्यप्रद होते थे। उस समय केवल राजयोग का ही प्रचार था, उसी से ब्रह्म ज्ञान द्वारा सब प्रकार के दुःखों को दूर करके आनन्दसागर में निमग्न रहते थे। परन्तु आजकल रोगों की भरमार है। न शुद्ध आचार है, न विचार, चारों ओर दुराचार है व्यभिचार है, अत्याचार है। जुआ, चोरी, हिंसा, झूठ, कपट भ्रूणहत्या का गरम बाजार है। भयङ्कर दुर्भिक्ष का कराल काल है, पांच ६ सेर का आटा और पांच छ सेर की दाल है। मन सवामन की लकड़ी और दस बारह सेर के कोयले हैं, कहीं अनावृष्टि है, कहीं अतिवृष्टि और ओले हैं। मनुष्यों की भूख और आयु घट गई है। कब्रों से भूमि और मुर्दों की हड्डियों से गंगा पट रही हैं। संसार के खूंट २ पर युद्ध मच रहा है। आराम कहां? ऐसी दशा में योग का नाम कहां? योगसाधन कालमें योगी को घी दूध तथा शुद्ध फलों की आवश्यकता है। परन्तु घी दूध तथा फलवाले वृक्ष बहुत कुछ कट गये और कटे जाते हैं, इसलिये शुद्ध घी दूध नहीं मिल सकता है। रुपये का सात छटांक घी का भाव है। उसमें नानाप्रकार की चर्बी

आदि का मिजाज है। ऐसे समय में योगाभ्यास करना विशेष कर राजयोग का साधन महा कठिन सा तथा दुस्तर प्रतीत हो रहा है। ऐसी दशा में हठयोग का अभ्यास भी निभ जाये तो कुशल है। इसलिये बलात् तथा हठात् मन को अभ्यास में लगाया जाता है उस योगसाधन का नाम हठयोग युक्ति युक्त है परन्तु जिन्हें दृढ़ वैराग्य हो गया हो "आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्" अपने स्वकल्याणार्थ पृथिवी के समस्त विषय पदार्थों को त्यागकर राजयोग द्वारा ही अभ्यास को चलावें। इसमें पहिले ही से यम नियम का साधन करके प्राणायाम का अभ्यास करके योग के अगले अङ्गों का जैसा कि 'आत्मयोग' पुस्तक में मैंने लिखा है अभ्यास प्रारम्भ करके समाधि द्वारा ब्रह्मज्योति की प्राप्ति हो जाती है। यह साधन उत्तम कोटिके जिज्ञासुओं तथा अधिकारियोंके लिए है। हठयोग बहुत पीछे निकाला गया जब लोग रोगी होने लगे ऋषिलोग त्रिकालदर्शी होते हैं वे जानते थे कि आगे के लोग व्यभिचारी होंगे छः सात छटांक घी बिकेगा, गाय भैंस सब नष्ट होंगे विदेशी राजा विशेष कर इस देशको महा नरक बना देंगे। इसलिए उन्होंने पहिले शरीरकी शुद्धि और आरोग्यताके अर्थ 'हठयोग' का उपदेश निम्न प्रकार किया उनके नाम ये हैं:—(१) यम, (२) नियम (३) आसन, (४ मुद्रा, (५) बन्ध, (६) षट्कर्म, (७) प्राणायाम।

योग का पहला अंग

अहिंसा सत्य मस्तेयं ब्रह्मचर्यं क्षमा धृतिः।
दयार्जवं मिताहारः शौचं चैव यमादश ॥ (या० सं०)

(अर्थ)—१ अहिंसा (वैरत्याग), २ सत्य ३ अस्तेय (मनसा वाचा, कर्मणा चोरी का त्याग), ४ ब्रह्मचर्य्य, ५ क्षमा, ६ धृति (धीरता), ७ दया, ८ आर्जव (प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा एक रूपत्व मार्जवम्) प्रवृत्ति, निवृत्ति में मनोवृत्ति को

समान रखना अर्थात् सरल स्वभाव), ९ मिताहार, १० शौच (बाहर मट्टी जलादि से भीतर धर्माचरण और आत्मविद्या के अभ्यास से शुद्ध रखना) ये दश यम हैं ।

योग का दूसरा अंग

तपः सन्तोष मास्तिक्यं दानमीश्वर पूजनम् ।
सिद्धान्त श्रवणं चैव ह्रीर्मतिश्चजपो हुतम् ॥
"एतेच नियमाः पोक्ता स्तांश्च सर्वा पृथक् शृणु" ॥ (या०सं०)

(अर्थ)—१ तप (जैसा कि "शरीर योग" में शारीरिक, मानसिक और वाचिक तीन प्रकार के तप भगवद्गीता के अनुसार वर्णन किया गया है अर्थात् तीनों को शुद्ध रखते हुए सुख, दुख, हानि, लाभ, मान, अपमान का सहन करना कभी सत्य से न हटना), २ सन्तोष (अर्थात् अपनी ही कमाई में प्रसन्न रहना कभी पर धन पर मन न चलाना), ३ आस्तिक्य (श्रुति, स्मृति प्रोक्त कर्म पर दृढ़ रहना), ४ दान (सुपात्र अर्थात् योग्यायोग्य देख कर सहायता करना), ५ ईश्वर पूजन (उत्तम कर्म यज्ञ, हवन, योगाभ्यासादि करके ईश्वर के अर्पण करना, अपना कर्त्तव्य समझ कर काम करना परन्तु उसका फल न चाहना) ६ सिद्धान्त श्रवण (वेद तथा वेदानुकूल ग्रन्थोंके प्रतिपादित सिद्धान्तों का श्रवण करना) ७ ह्री = श्रुति, स्मृति, सदाचार, आत्मप्रिय से भिन्न कर्म करने में जो लज्जा होती है उसीको ह्री कहते हैं अर्थात् ऐसे कर्मों से बचे रहना ताकि लज्जा न करना पड़े, ८ मति (वेद, स्मृति, सदाचार और आत्मप्रिय जो कर्म उनके करने में श्रद्धा हो उसी को मति कहते हैं ९ जप (प्रणव 'ओ३म्' का मानसिक जप करना), १० हुत (वेदानुकूल यज्ञ कर्ममें प्रवृत्त रहना) इस प्रकार जो दश यम और दश नियम कहे हैं उनका अभ्यास करना चाहिये ।

योगाभ्यास—स्थानविचार

आदौ स्थानं तथा कालं मिताहारं तथा परम् ।
नाड़ी शुद्धिं च तत्पश्चात्प्राणायामं च साधयेत् ॥

(अर्थ)—पहिले स्थान फिर काल फिर मिताहार फिर नाड़ी शुद्धि इतने साधन होने के पीछे फिर प्राणायाम करने को आरम्भ करे ।

योगाभ्यासके योग्य स्थान

सुदेशे धार्मिके राज्ये सुभिक्षे निरुपद्रवे ।
तत्रैकं कुटिरं कृत्वा प्राचीरैः परिवेष्टितम् ॥
वापी कूप तड़ागंच प्राची शोदय वर्तिच ।
नात्युच्चं नाति निम्नंच कुटीरं कीट वर्जितम् ॥
"सम्यग्गोमय लिप्तंच कुटीरं तत्रनिर्मितम्" ।
वारि भिश्च सुसम्पन्नैः पुष्पैर्नाना विधैर्युतैः ॥
फल मूलैश्च सम्पूर्णैः सर्व काम फलप्रदे ।
देवाश्रमे वा नद्यां वा ग्रामे वा नगरेषु च ॥
सुशोभनं मठं कृत्वा सर्व रक्षा समन्वितम् ।
निर्जने निलये रम्ये वाता तप विवर्जिते ॥
एवं स्थानेषु गुप्तेषु योगारम्भं च कारयेत् ।

अर्थ—अच्छा देश हो, धर्मात्मा नीतिवान् राजा का राज्य हो, वहां का जल वायु उत्तम हो, धनधान्य की समृद्धि हो, उपद्रव कोई नहीं हो, ऐसे देश में एक ऐसी पर्णकुटी (झोपड़ी) बनानी, जिसके चारों ओर बाड़ लगी हो उस पर्णकुटी के पूर्व और ईशान दिशामें बावड़ी, कुवा, तलाव आदि जलाशय हो। वह न बहुत ऊंची और न बहुत नीची हो, अर्थात् मध्यम मान की हो। उसमें मच्छड़, डांस, कीड़ी आदि नहीं होने चाहिए। अथवा जिस स्थान में उत्तम २ जलसे भरे हुए सरोवर हों, अनेक प्रकारके सुगन्धी पुष्प हों, जहां कन्दमूल,

फल परिपूर्ण हों, और मन चाहे प्रयोजनीय पदार्थ मिल सकते हों ऐसे देवाश्रम नदी तीर, गाँव वा नगरमें उत्तममठ बनाना चाहिये। उसके भी चारों ओर कोट आदिसे पूरी रक्षा होनी चाहिये। अथवा जो मनुष्य रहित रमणीय स्थान हो, जह वायु और घाम न आ सकता हो ऐसे गुप्त स्थानों में योग भ्यास करना उचित है।

योगारम्भके योगकाल

वसन्ते शरदि प्रोक्तं योगारम्भं समाचरेत्।
तथा योगी भवेत्सिद्धो रोगान्मुक्तो भवेद् ध्रुवम्॥

(अर्थ)—वसन्त (चैत्र, वैशाख) और शरद (आश्विन, कार्तिक) इन ऋतुओंमें योगारम्भ करना उचित है। इससे योगी रोगसे मुक्त होकर निश्चयसे योगसिद्धिको प्राप्त होता है।

योगियोंका प्रशस्त अन्न

अभ्यास काले प्रथमे शस्तं क्षीराज्य भोजनम्।
ततोऽभ्यासे दृढ़ीभूते न तादृङ्नियमग्रहः॥

(अर्थ)—आसन और प्राणायाम इनके अभ्यास के आरम्भमें भोजनमें दूध और घी विशेष होना चाहिये। फिर अभ्यास दृढ़ होनेपर ये पदार्थ न्यून होनेपर भी काम चलेगा।

लघुपाकं प्रियं स्निग्धं यथाधातु प्रपोषणम्।
मनोभिलषितं भोज्यं योगी भोजन माचरेत्॥

(अर्थ)—दूध भात, चपाती (फुलके) इत्यादि प्रकारका शीघ्र पचने वाला और अपनी इच्छाके अनुसार प्रिय तथा स्निग्ध होकर रक्तवृद्धि करनेवाला ऐसा भोजन योगाभ्यासीको करना चाहिये।

योगाभ्यासियोंका भोजन और शयन

अनिलेऽर्के प्रवेशेच भोक्तव्यं योगभिः सदा।
वायौ प्रविष्टे शशिनि शयनं साधकोत्तमैः॥ (शि. सं.)

(अर्थ)—साधकको इड़ा नाड़ीका (दाहिना) सूर्य स्वर चलते रहते भोजन और पिंगला का (बांया) चन्द्रस्वर चलते शयन करना चाहिये।

* ओ३म् *

१ आसनविधि. २ आसनचिकित्सा।

* योगका तीसरा अङ्ग आसन *

तत्रस्थिर सुखमासनम् ॥ यो० पा० २ सू० ४६

अर्थ—जिसमें सुखपूर्वक शरीर और आत्मा स्थिर हो, उसको आसन कहते हैं। आसनके सुस्थिर होनेसे जब शीतोष्ण अधिक बाधा नहीं करते, अंगोंका कम्पन नहीं होता, तभी चित्तकी वृत्तियोंका निरोध, मन इन्द्रिय और आत्माकी स्थिति परमेश्वरमें होकर समाधियोग प्राप्त होता है। आसन गुदगुदा होनेसे नूतन योगी अधिक देरतक बैठने का अभ्यास कर सकता है, अतएव शरत्कालमें ऊपरसे ऊर्णासन वा कम्बल तथा अन्य ऋतुओंमें कुछ वस्त्र बिछाकर सुखसे बैठे। "ततो द्वन्द्वानभिघातः यो० पा० सू० ४७ = जब आसन दृढ़ होता है, तब उपासना करनेमें कुछ परिश्रम करना नहीं पड़ता और न सरदी गर्मी अधिक बाधा करती है। योगाङ्गोंमें आसन योगका तीसरा अङ्ग माना गया है।

आसनोंकी गणना

आसनानि समस्तानि यावन्तो जीव जन्तवः।
चतुरा शीतिलक्षाणि शिवेन कथितं पुरा॥
तेषां मध्ये विशिष्टानि षोडशोनंशतं कृतम्।
तेषां मध्ये मर्त्यलोके द्वात्रिंशदासनं शुभम्॥ (घे० सं०)

(अर्थ)—जितनी जीवोंकी जाति हैं उतने आसन हैं अर्थात् ८४ लाख आसन पहिले शिवजीने कहे हैं। उनमें विशेष आसन ८४ हैं, उसमें भी मनुष्य लोकमें कल्याण करनेवाले आसन ३२ हैं।

आसनक्रियासे लाभ

मला कलासु नाडीषु मारुतो नैव मध्यगः।
कथं स्यादुन्मनीभावः कार्यसिद्धिः कथंभवेत् ॥
शुद्धिमेति यदा सर्वं नाडी चक्रं मला कुलम्।
तदैव जायते योगी प्राण संग्रहणे क्षमः ॥
हठस्य प्रथमांग त्वा दासनं पूर्व मुच्यते।
कुर्यात्तदासनं स्थैर्य मारोग्यं चांग लाघवम् ॥
वसिष्ठाद्यैश्च मुनि भिर्मत्स्ये न्द्राद्यैश्च योगिभिः।
अङ्गीकृता न्यासनानि कथ्यन्ते कानि चिन्मया॥(ह० प्र०)

(अर्थ)—मलसे बिगड़ी हुई नाड़ियोंमें वायु प्रवेश नहीं करता, फिर उन्मनी भाव कैसे होगा और कार्यसिद्धि भी कैसे होगी। सर्व नाड़ी मलरहित होनेसे प्राणायाम करनेकी योग्यता आती है। हठयोगका पहिला अङ्ग आसन है, वही पहिले कहते हैं। आसन करनेसे और उसके स्थिर होनेका अभ्यास करनेसे चित्त भी स्थिर होता है, शरीर आरोग्य होता है. और अङ्गोंमें चपलता आती है। अब वसिष्ठ आदि मुनियों तथा मत्स्येन्द्रनाथ आदि योगियों करके स्वीकार किये हुए कुछ आसन यहांपर लिखते हैं।

विशेष प्रयोजनीय ३२ आसनोंके नाम

(१) सिद्धासन, (२) बद्धपद्मासन, (३) वज्रासन, (४) स्वस्तिकासन (५) सिंहासन, (६) गोमुखासन, (७) वीरासन, (८) धनुरासन, (९) मृतासन, (१०) मत्स्यासन, (११) मत्स्येन्द्रासन, (१२) गोरक्षासन, (१३)

पश्चिमोत्तानासन, (१४) उत्कटासन, (१५) संकटासन, (१६) मयूरासन, (१७) कुक्कुटासन, (१८) कूर्मासन, (१९) उत्तानकूर्मासन, (२०) मंडूकासन, (२१) उत्तान-मंडूकासन, (२२) वृक्षासन, (२३) वृषासन, (२४) शलभासन, (२५) मकरासन, (२६) उष्ट्रासन, (२७) भुजङ्गासन, (२८) योगासन, (२९) सर्वांगासन, (३०) अर्द्धवृत्तासन, (३१) द्वितीय कूर्मासन, (३२) द्वितीय धनुरासन।

१ सिद्धासन विधि

बांये पांव की एड़ी, गुदा और अण्डकोष (योनिस्थल) के बीच के भाग में दृढ़ बैठाकर दाहिने पांव की एड़ी मुत्रेन्द्रिय के ऊपर के भाग में दृढ़ बैठानी और टोडी (दाढ़ी) हृदय (हँसली) के जोड़ दृढ़ लगाकर स्थिर और सीधा शरीर करके पलकों वा आँखों को न हिला भौंहोंके बीचमें (भ्रूमध्यमें) दृष्टि जमानी, इसको सिद्धासन कहते हैं। फलः—इस आसन से चित्तवृत्तिकी शान्ति, आरोग्य और नाड़ी शुद्धि होती है।

२ बद्ध पद्मासन विधि

दाहिना पाँव बाईं जाँघपर और बाँया पाँव दाहिनी जाँघ पर ऐसी रीति से रखना कि उनकी एँड़ियें पेटके नीचेके भाग को सटके बैठे उपरान्त दोनों हाथ पीछे फेरके दाहिने हाथसे दाहिने पाँवका और बाएँ हाथसे बाएँ पाँवका अँगूठा केवल हाथ के अँगूठा और तर्जनी दो अँगुलियों की चुटकीमें पकड़ना, फिर टोडी हृदय (हसली) के जोड़में लगाके दबाना, अनन्तर नासिका के अग्र भागपर दृष्टि स्थिर करनी, इसको ज्ञाता लोग बद्धपद्मासन कहते हैं। फल—यह सब व्याधियोंका नाश करने वाला है। इस आसनकी दूसरे प्रकारकी विधि "गोरक्षपद्धति" में निम्न प्रकार लिखा है:-यत्नसे दोनों जाँघों पर दोनों पाँव चित्त रखके दोनों जाँघोंके मध्य भागमें दोनों हाथ, बाएं पर दाहिना

और दाहिने पर बाँया, ऐसे चित्त रखने, दृष्टि नासाग्रमें लगानी और जीभ दांतोंके मूलमें लगाके टोडी हृदयके (हसली) में लगानी। इसको भी पद्मासन कहते हैं। फल—इससे सब व्याधि और आलस्य नष्ट होके सिद्धासनके (आलस्य हरण, व्याधिहरण आदि) सब गुण आते हैं।

३ बज्रासन विधि

दोनों जाँघें और दोनों पीड़री इनको ऊपर नीचे बराबर करके दोनों पावोंके तलवोंको गुदाके दोनों ओर बराबर बैठाकर, बैठना, इसको बज्रासन कहते हैं। फल—यह योगियोंको सिद्धि देने वाला है।

४ स्वस्तिकासन विधि

दोनों पावोंके तलवे दोनो जाँघोंके भीतर ऐसे दबावे कि पावोंके आगेका भाग दोनों पीडरियोंसे ढक जावे। फिर सीधा तनके बैठना। इसको स्वस्तिकासन कहते हैं। फल—यह शरीर को निरोगी रखता है।

५ सिंहासन विधि

अंडकोष (योनिस्थल) के नीचे सीवनके दोनों ओर दाहिने पाँवकी गाँठ (गुल्फ) बाँई ओर और बाँए पाँवकी गाँठ दाहिनी ओर लगाके दोनों घुटने भूमिपर लगावे। फिर दोनों घुटनों पर दोनों हाथ अंगुलिएं फैलाकर रखने, मुह बाकर जीभ बाहर निकालके उसका अग्र टोडी पर लगाना, नासाग्र पर दृष्टि रखनी और तीनों बन्ध साधन करने। इसको सिंहासन कहते हैं। फल—इस आसनसे तीनों बन्ध सिद्धि होते हैं। शरीरका बल और जठराग्निकी वृद्धि होती है।

६ गोमुखासन विधि

दाहिने पाँवकी गाँठ (गुल्फ) बाएँ चूतड़ के नीचे और

बाएँ पाँव की गाँठ दाहिने चूतड़ के नीचे रखके तनके बैठना और बायाँ हाथ पीछे फेर के ऊँचा उठाना, दाहिने हाथ की कोहनी ऊँची करके हाथ नीचे झुकाना। दाहिनी तर्जनी में बाएं हाथकी तर्जनी दृढ़ पकड़नी। इसमें गौ के मुख का आकार दीखता है, इस लिये इसको गोमुखासन कहते हैं।

७ वीरासन विधि

दाहिना पाँव बाईं जाँघ पर रखना, बाँया पाँव दाहिनी जाँघ पर रखना। फिर दोनों हाथ दोनों घुटनों पर रखके, तनके बैठना। इसको वीरासन कहते हैं।

८ धनुरासन विधि

(हठयोग प्रदीपिकाके अनुसार)

दाहिने पाँव पर बायाँ पाँव रखके दोनों पाँव फैलाने। पीछे बाएँ पाँव के अँगूठेको दाहिने हाथकी चुटकी से पकड़के, उसको दाहिने कान में लगाना और दाहिने पाँव के अँगूठे को बाएं हाथकी चुटकी में पकड़के पाँव वैसा ही फैलाया हुआ रहने देना। इसमें धनुष में बाण लगा के आकर्षण (कान तक खींचने) समान दीखता है, इससे इसको धनुरासन कहते हैं।

धनुरासन विधि

(घेरंड संहिताके अनुसार)

भूमि पर पाँव फैलाके दण्डेके समान पट होकर सो जाना। पीछे दोनों पाँव घुटनोंसे मोड़के उनकी एँड़ियें चूतड़ को लगानी फिर दोनों हाथ पीठ की ओर फैलाके दोनों पाँवको गाँठोंके पास दृढ़ पकड़ रखना और केवल पेटके नीचेके भाग पर शरीरका भार देके शरीर को धनुषके समान करना, इसको धनुरासन कहते हैं। फल—यह आलस्यको दूर करके कुंडलिनी

को चञ्चल करता है। जिस ओरके पाँवको खींच रक्खे उधरके वायुको ऊर्ध्वगामी करता है।

९ मृतासन विधि

भूमि पर मुरदेके समान चित्त सो जाना, इसको मृतासन अथवा शवासन कहते हैं। और आसनोंसे भये हुए तथा अन्य सब श्रम इस आसन से दूर होते हैं और मनको विश्राम (स्थिरता) मिलती है।

१० मत्स्यासन विधि

बद्ध पद्मासनके हाथ छोड़कर पालथी जैसीकी वैसी रख के चित्त होकर सोजाना, फिर दोनों हाथ माथेपर से लेके बाँए हाथसे दाहिना और दाहिने हाथसे बाँया भुजदण्ड पकड़ना, इसको मत्स्यासन कहते हैं। फल—यह सर्वरोगोंका नाश करता है और शौच (दस्त) साफ होके आरोग्य होता है।

११ मत्स्येन्द्रासन विधि

दाहिने पाँवका पंजा बांए पांवके मूलमें ऐसा रखनाकि उसकी ऐड़ी (तूँदी) में लगे और अंगुलियें पालथीके बाहर नहों। फिर बाँयां पांव दाहिने घुटनेके पास पंजा भूमिपर लगाके रखना। फिर दाहिना हाथ बांए घुटनेके बाहरसे चित्त डालके उसकी चुटकीमे बांए पांवका अंगूठा पकड़के उस बांए पावके पंजेका दाहिने घुटनेके बाहर सटाके रखना। फिर बाँया हाथ पीठकी ओरसे फिराके उससे दाहिने पाँव की एँड़ी पकड़ रखनी और अपना मुख तथा अंग पीछेकी ओर फेरके नासाग्रमें दृष्ट करनी। इसको मत्स्येन्द्रासन कहते हैं। फलः—

मात्स्येन्द्र पीठं जठर प्रदीप्ति प्रचण्ड रुङ् मण्डल खण्डनास्त्रम्
अभ्यासतः कुण्डलिनी प्रबोधं चन्द्रस्थिरत्वं च ददाति पुंसाम्॥

मत्स्येन्द्रासनसे जठराग्नि बढ़ता है। बड़े २ रोगोंके समूहों का नाश करनेको मानो यह एक अस्त्रही है। इसके अभ्यासके कुण्डलिनीका प्रबोध होके मस्तकमें का अमृत स्थित होता है।

१२ गोरक्षासन विधि

दोनों पांवोंके तलुवे चित्त करके ऐसे लानेकि दोनों एड़ी आगे आवे और पावोंकी दोनों गाँठें गुदाकी सीवनके दोनों ओर आवें फिर दोनों हाथ चित्त करके पीछेसे लाके दोनों पावोंको गाँठों को ढाकना, और जालन्धर बन्ध करना। इसको गोरक्षासन कहते हैं। फल—इस आसनसे सर्वसिद्धि मिलती है और स्वप्नावस्था बन्द होती है।

१३ पश्चिमोत्तानासन विधि

भूमि पर दोनों पाँव फैलाके बैठना फिर दोनों हाथोंसे दोनों पावोंके अंगूठे पकड़ने, पीछे दोनों घुटनो पर मस्तक रखना, उसको पश्चिमोत्तानासन कहते हैं। फल-इस आसनसे जठराग्नि बढ़ता है, पेटमें कृशता आती है और आरोग्य होकर वायु की गति सुषुम्ना नाड़ीमें होती है तथा नाड़ीं, सामर्थ्य-युक्त होकर शुद्ध होती है।

१४ उत्कटासन विधि

पावोंके दोनों अँगूठे भूमि पर टिका के दोनों एंड़ीके ऊपर उठानी, पीछे उन एंड़ियों पर गुदा रखके बैठना, इसको उत्कटासन कहते हैं (इसको अंगुष्ठासन भी कहते हैं)।

१५ संकटासन विधि

बाँयां पांव भूमि पर सीधा रखके उस पर दाहिने पांव को लपेट देके, रखना; पीछे दोनों घुटनों पर दोनों हाथोंके तलवे रखने। इसको संकटासन ऐसा कहते हैं। यह बैठके और खड़ा होके दोनों प्रकारसे होता है।

१६ मयूरासन विधि

दोनों हाथोंके तलवे भूमि पर टिकाके दोनों कोहनी नाभि (तूंदी) के दोनों ओर लगाके उस पर अपना शरीर ऐसा तौल केरखना कि जैसे सीधी लकड़ी रक्खी जावे, ऐसे स्थिर होके रहना; इसको मयूरासन कहते हैं। फलः—

हरति सकल रोगा नाशु गुल्मोदरा—
दीनभि भवति च दोषा नासनं श्रीमयूरम्।
बहुक दशन भुक्तं भस्म कुर्याद शेषं॥
जनयति जठराग्निं जारये त्कालकूटम्।

यह गुल्म उदर आदि सर्व रोगों को शीघ्र ही हरण करके बात पित्तादिका नाश करता है, तथा अति भोजन किया हो वा बुरा (गजबज) अन्न खाया हो तो उसको भी भस्म करता है, एवं जठराग्निको बढ़ाता है और काल कूट बिष खाया हो तो उसको भी पचाता है।

१७ कुक्कुटासन विधि

पद्मासन करके दोनों पावोंके पंजे भीतर रहें ऐसे, दोनों जांघ और पिंड़रियोंके बीच में से दोनों हाथ कोहनी तक नीचे निकालके, पंजे भूमि पर टिकाके, उन पर सब शरीर तौलके रखना, इसको कुक्कुटासन कहते हैं। फल—यह आलस्यको दूर करके जठराग्निकी वृद्धि वा अन्नका उत्तम पाचन करता है और नाड़ीको शुद्ध करता है।

१८ कूर्मासन विधि

पहिले पिडरियों पर जांघें रखके बैठना फिर पावोंकी गांठों का बीचला भाग भूमि पर टिकाके एंड़ियें एकसे एक मिला लेनी। ऐसा करने से स्वयं ही गांठों के ऊपर का भाग ऊपर ही रहेगा फिर उन (एड़ियों) को अण्डकोष की ओर

लगाना, इससे पावों की अंगुलियें बाहर निकली हुई रहेंगी। फिर माथा और गला सीधा रहे ऐसा बैठना। पीछे हाथ के दोनों तलवों के पृष्ठ भाग को अपनी दोनों काखों में लगाना। इसको कूर्मासन कहते हैं। फल-इससे अपान वायु और वीर्य इनकी ऊर्ध्व गति होके इन्द्रिय वृत्ति का स्तंभन और बल वृद्धि होती है।

१९ उत्तान कूर्मासन विधि

कुक्कुटासन करने के उपरान्त भूमि पर जमाये हुए हाथ वैसे ही ऊपर करके गले में डाल कर पकड़ रखना, इसको उत्तान कूर्मासन कहते हैं। फल-इससे आलस्य दूर होके इन्द्रिय शान्त होते हैं।

२० मंडूकासन विधि

पावों के आगे का भाग भूमि पर लगा के दोनों अंगूठे आमने सामने लाकर लगाने फिर घुटनों को आगे करके उन पर दोनों हाथ टिका के बैठना, इसको मंडूकासन कहते हैं।

२१ उत्तान मंडूकासन विधि

पहिले कहे हुए के अनुसार मण्डूकासन करके दोनों हाथों को माथे पर करके बाएं हाथ से दाहिना और दाहिने हाथ से बायां भुज दण्ड पकड़ना, इसको उत्तान मण्डूकासन कहते हैं।

२२ वृक्षासन विधि

बाएं पांव की जांघ के मूल में दाहिना पांव लगाकर वृक्ष के समान खड़े होना, इसको वृक्षासन कहते हैं। इसे बाएं पांव के अनुसार दाहिने पांव से भी करना चाहिये।

२३ वृषासन विधि

बाएं पांव की गांठ पर गुदा रख के दाहिना पांव बाईं जांघ

पर से वांई ओर करके उसके ऊपर का भाग भूमि पर टिके ऐसा करना, इसको वृषासन कहते हैं। यह दोनों अंगों से करना।

२४ शलभासन विधि

दोनों हाथों के तलवे छाती के नीचे भूमि पर टिका के उन पर छाती रख के पट होके सोना और जुड़े हुए दोनों पाँव फैला कर भूमि से ऊपर वालिस्त भर उठे रखने। इसको मुनीन्द्र लोग शलभासन कहते हैं।

२५ मकरासन विधि

पेट और छाती भूमि पर लगा के सोना, और दोनों पांव एक से एक दूर हो ऐसे फैला देने, और दोनों हाथ माथे पर करके वाएं हाथ से दाहिना और दहिने हाथ से बांया भुज दण्ड पकड़ना, इसको मकरासन कहते हैं।

२६ उष्ट्रासन विधि

पट सो के दोनों पांव घुटनों से उलट के पीठ की ओर लाने, दोनों हाथों से दोनों पावों के अंगूठे पकड़ने और कंधे भूमि पर लगा के माथा ऊपर करना, इसको उष्ट्रासन कहते हैं। फल—इससे भूख प्यास सहके चलने की शक्ति आती है। प्रवास करने वालों को यह आसन हितावह है।

२७ भुजंगासन विधि

पट सो के कमर से नीचे का भाग पांव समेत भूमि पर समान टिका के तूँदी के पास दोनों हाथों के तलवे भूमि पर टिका देने; फिर छाती से माथे तक का भाग सांप के फन के जैसा ऊपर उठा के रक्खे; इसको भुजंगासन कहते हैं। फल— इससे जठराग्नि की वृद्धि होकर सर्व रोगों का नाश होता है और कुण्डलिनी जागृत होती है।

२८ योगासन विधि

दोनों घुटनों पर दोनों पांव चित्त रख के दोनों हाथ चित्त रखने फिर पूरक (पूरक के लक्षण आगे हैं) करके नासाग्र में दृष्टि करे, इसको योगासन कहते हैं। यह योगियों का योग सिद्ध करा देने वाला है।

२९ सर्वांगासन विधि

साफ चित्त सोके पहिले चूतड़ तक भूमि पर ही रख के केवल दोनों पावों को जोड़ के ऊँचा करना, पीछे युक्ति से केवल कंधा और माथा इन्ही पर सब शरीर को तान के खड़ा करना।

३० अर्द्धवृक्षासन विधि

अंगोछे की गिडुरी वना के उस पर दोनों हाथों के तलुओं पर सिर रखके सीधे ऊपर को दोनों पैर उठा के घुटने से दोनों घुटने दोनों पावों को चूतड़ की ओर झुकाना।

३१ कूर्मासन विधि

(आकार २ रा०)

संख्या १८ के अनुसार आसन करके दोनों घुटने एक दूसरे से अलग करके उसके बीच में छाती भूमि पर टिका देनी और माथा ऊँचा करके दोनों कोहनी दोनों घुटनों से भिड़ा के हाथों के पंजे कांख में लगाने। अब इसके उपरान्त योग मुद्रा का वर्णन किया जावेगा। योगमुद्रा भी आसनों की भांति अभ्यास करने से अनेकों लाभ होते हैं।

३२ धनुरासन विधि

घेरंड संहिता के अनुसार इस आसन की विधि सं० के नीचे पृष्ठ में लिख आए हैं।

४ योगमुद्रा

हठयोग में महामुद्रा; विपरीत करणी मुद्रा, षरामुखीमुद्रा, अश्विनी मुद्रा और काकीमुद्रा ये पांच मुद्रा कहे हैं।

१ महामुद्रा विधि

बड़े यत्न से गुदा के मूल में बाएं पांव की गांठ लगा के पांव का तलवा दाहिनी जांघ से भिड़ा देना, फिर दाहिना पांव लम्बा फैला के दोनों हाथों से उसका अंगूठा पकड़ना, फिर ठोडी छाती पर टिका के भौंहों के बीच में दृष्टि स्थिर करनी। इसे महामुद्रा कहते हैं। फल—इससे क्षय, कास, उदावर्त्त, प्लीहा, तथा जीर्णज्वर आदि सब रोगों का नाश होता है। यह जैसे बाएं अंग से कही है वैसी दाहिने अंग से भी करनी चाहिये। दोनों ओर के समान संख्या होने तक करनी चाहिये।

२ विपरीत करणी मुद्रा विधि

धोती वा अँगोछे की गिडुरी बना के उस पर शिर रखके दोनों हाथ शिर के दोनों ओर रखने फिर पांव ठीक शिर के ऊपर हों ऐसे लंबे करने। ऐसे ऊपर तूंदी और नीचे तालु करने से नाभि स्थान में सूर्य और तालु स्थान में चन्द्र रहने से सूर्य ऊपर और चन्द्र नीचे होता है। इसको विपरीत करणी मुद्रा कहते हैं। फल—इसका नित्य थोड़ा २ अभ्यास करने से जठराग्नि बहुत बढ़ता है और विपरीत दोष नहीं सा होता है। अभ्यास करने में पहिले दिन थोड़ा सा नीचे शिर ऊपर पाँव बढ़ा के करे, फिर कुछ अधिक अभ्यास को बढ़ा कर पांवों को ठीक झुकावे फल-यों ६ मास तक अभ्यास करने से चमड़ी का सिकुड़ना तथा धौले केश होना नहीं रहेगा। इस प्रकार अभ्यास बढ़ा के एक प्रहर तक स्थिर हो, रहे तो वृद्धावस्था नाश होके उसको युवावस्था आ जाती है।

दुसरा प्रकार

दोनों हाथों की अंगुलियें एक में एक डाल के गिंडुरी बना के उसपर शिर रख के पूर्ववत् पांव ऊंचे तान के स्थिर होना। यह भी विपरीत करणी मुद्रा होती है। इसको कोई 'कपालासन' कहते हैं। इसमें विपरीत करणी के सब गुण हैं।

३ षण्मुखीमुद्रा

दोनों कर्ण रन्ध्र (कानों के छेद) दोनों अंगुठों से दोनों तर्जनियों से, दोनों नासापुट (नाकके छेद) दोनों बिचली अंगुलियों से और दोनों अनामिका कनिष्ठिकाओं से मुख बन्द करना, इसको षण्मुखी मुद्रा कहते हैं। फल इससे नाद श्रवण और तेजो दर्शन होता है।

४ अश्विनीमुद्रा

बारम्बार गुदा को सिकोड़ के घोड़े की गुदा के समान् बाम्बार खोलते रहना, इसको अश्विनी मुद्रा कहते हैं। फलः—

अश्विनीपरमामुद्रा गुह्यरोग विनाशिनी।
बल पुष्टि करी चैव अकाल मरणं हरेत्॥

यह उत्तम शक्ति को बढ़ाने वाली है। इससे गुह्य रोग का नाश होकर बल और बुद्धि बढ़के अकाल मृत्यु नहीं होता।

५ काकीमुद्रा

कौवे की चोंच के समान मुंह (जीभ) करके धीरे २ वायु का पूरक करे, इसको काकी मुद्रा कहते हैं। फल—इससे कौवे के समान निरोग होता है। हठयोग में बन्ध क्रिया का अभ्यास करने से आसन, मुद्रा की भांति फल मिलता है।

५ योगबन्ध प्रकरण

योगक्रिया में बन्ध पांच प्रकार के हैं:—१ महावेध, २ उड्डीयान बन्ध, ३ जालन्धर बन्ध, ४ मूल बन्ध, ५ महाबन्ध।

१ महावेध विधि

योगी महाबन्ध में स्थित होकर पूरक करके जालन्धर बन्ध करके फिर दोनों हाथों के तलवे चित्त भूमिपर टिका के उनपर दोनों चूतड़ों के कूले रख के हाथों से उठा के धीरे २ भूमिपर पटके। फल—इससे वायु इडा पिंगला का त्याग कर के सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करता है। शरीर के चमड़े का सिकुड़ना और बालों का सफेद होना, इससे मिटता है। महामुद्रा, महाबन्ध, और महावेध इन तीनों के अभ्यास से आकस्मिक जरामृत्यु भी टल जाता है।

२ उड्डीयानबन्ध विधि

दोनों पैरों के तलवे आपस में मिलाके आसन लगाना और दोनों गुठनों पर दोनों हाथ को चिपका के रखना तूंदी के ऊपर का पट सिकोड़ के तूंदी ऊपर खींचनी, इसको उड्डीयान बन्ध कहते हैं। फल—यह मृत्युरूपी हाथी के लिये सिंह है। सब बन्धों में श्रेष्ठ है। मुक्ति देनेवाला और बूढ़े को भी जवान बनाता है।

३ जालन्धर विधि

गले को सिकोड़ के ठोडी छाती में डाट के लगानी, इसको जालन्धर बन्ध कहते हैं। फल—जालन्धर बन्ध और महामुद्रा ये जरा मृत्यु का क्षय करनेवाले हैं। ६ मासतक अभ्यास करने से जालन्धर बन्ध सिद्ध होता है।

४ मूलबन्ध विधि

पांवों की एड़ियों से योनि स्थान गुदा और अंडकोश के बीच के भाग) को डाटकर दबा के गुदा को शिकोड़ के अपान वायु को ऊपर खींचे, इसको मूलबन्ध कहते हैं। फल—इसके अभ्यास से अपान और प्राण वायु का ऐक्य होके मल मूत्र का क्षय होता है और वृद्ध पुरुष भी जवानी प्राप्त करता है। यथा:—

अपान प्राणयोरैक्यं क्षयो मूत्रपुरीषयोः।
युवाभवति वृद्धोऽपिसततं मूल बन्धनात् ॥

५ महाबन्ध विधि

बाएं पांव की एड़ी सीवन में डाटकर लगानी फिर दाहिना पांव बाईं जांघपर रखना पीछे पूरक करके जालन्धर करके कुम्भक करना, पुनः मन स्थिर करके धीरे २ रेचक करना, इसी प्रकार इसका दाहिने अंग से भी अभ्यास करना। इसको महा बन्ध कहते हैं। फल—यह सब नाड़ियों की ऊर्ध्वगति को बन्द करने वाला है। उड्डीयान बन्ध की आकृति पहिली और यह आकृति दूसरी जाननी। इस प्रकार आसन, मुद्रा और बन्ध द्वारा यथाक्रम नाड़ियों की शुद्धि ,प्रत्येक योगाभ्यासियों को करना चाहिये।

नाड़ी शुद्धि लक्षण

वपुः कृशत्वंवदने प्रसन्नता नादस्फुटत्वं नयने सुनिर्मले।
अरोगता बिन्दु जयोऽग्नि दीपनं नाड़ी विशुद्धिर्हठयोग लक्षणम् ॥

भावार्थः—शरीर पतला होकर उसपर तेज आता है। नाड़ी शुद्धि होने से वायु को इच्छा के अनुसार इधर से उधर लेजा सकते हैं। जठराग्नि प्रदीप्त होता है। षरमुखी मुद्रा करने से मस्तक में नाद सुनने में आता है वा आरोग्य बढ़ता है। नाड़ी शुद्धि होने के ये लक्षण हैं। अब षट्कर्मविधि का आरम्भ किया जाता है यह भी योगाभ्यासियों के लिए बहुत ही उपयोगी जानकर लिखता हूं।

६ षट्कर्म विधि

मेदश्लेस्माधिकः पूर्वं षट् कर्माणिसमाचरेत्।
अन्यस्तु नाचरेत्तानि दोषाणां समभावतः ॥

अर्थः—मेद (चरबी) अर्थात् पेट का तोंद और शरीर

मोटा होना आदि तथा कफ जिनकी प्रकृति में अधिक है उनको ये आगे के छः कर्म अवश्य करने चाहिये इससे उनको बड़ा लाभ होता है इसी लिये इन ६ कर्मोंकी रीति यहां संक्षेप से निम्न प्रकार लिखते हैं:—

षट्कर्म नाम

धौतिर्वस्तिस्तथा नेति स्त्राटकं नौलिकं तथा ।
कपाल भाति श्चैतानि षट् कर्माणि प्रचक्षते ॥

(अर्थ)—१ धौति, २ वस्ति, ३ नेति, ४ त्राटक, ५ नौलि, ६ और कपालभाँति ऐसे ६ कर्म योगाङ्गमें वर्णन किये हैं ।

१ जलधौति [वमनधौति]

भोजनान्ते पियेद्वारि चा कंठं पूरितं सुधीः ।
ऊर्ध्वंदृष्टिः क्षणं कृत्वा तज्जलं वमयेत्पुनः ॥
"नित्यमभ्यासयोगेन कफपित्तं निवारयेत् ।"

(अर्थ)—भोजनके अन्तमें गलेतक पानी पीके क्षण भर ऊपर दृष्टि करके फिर वह पानी वांति करके गिरादेवे । ऐसा नित्य अभ्यास करनेसे कफ और पित्तरोग (यदि होवे तो) नष्ट हो जाते हैं ।

वासो धौति

चतुरङ्गुल बिस्तारं हस्त पंच दशायतम् ।
गुरुपदिष्ट मार्गेण सिक्तं वस्त्रं शनैर्ग्रसेत् ॥

(अर्थ)—चार अंगुल चौड़ा और १५ हाथ लम्बा ऐसा बारीक कपड़ा लेके उसको पहिले गरम पानीमें भिगोके निचोड़े (फिर घीमें चिकना करके) उसको या (शुद्ध पानीके साथ वा मसूरकी पकी हुई दालके छने हुए पानीके साथ) निगलने का अभ्यास गुरुके कहे हुए मार्गसे धीरे २ अर्थात् पहिले दिन

१ हाथ स्वस्थ होकर निगलना फिर कुछ देरकर वैसेही रखके पीछे धीरे २ बाहर निकालना। फिर दूसरे दिन २ हाथ ऐसे नित्य एक एक हाथ अधिक निगलते २ पन्द्रहवें दिन १५ हाथ निगलना; परन्तु उसका छोर हाथमें दृढ़ पकड़ रखना उसक पेटमें जाने देना ठीक नही है इस धौतीसे कास, श्वास, प्लीहा और अनेक प्रकार के कफदोष नष्ट हो जाते हैं। इसको बड़े यत्न से और ध्यान रखके करना चाहिये।

२ बस्ति

"नाभिदघ्नजले पायौ न्यस्तनालोत्कटासनः"।

(पूर्णाऽभ्यासीसे समझकर) इसके लिये नली ऐसी होनी चाहिये कि जिसके छेदमें कनिष्ठिका (छोटी अंगुली) आ जावे। वह अपने ६ अंगुल लंबी चाहिये। और उस नलीका मुंह बाहरसे कुछ बारीक होवे। फिर तूंदी इतने पानीमें निहुरके नली गुदामें चार अंगुल डाल के दो अंगुल बाहर रहने देना, पीछे अपान वायुको ऊपर खींचना। इससे नलीकी राहसे पानी पेटमें जाता है। फिर थोड़ी देर नौली(आगे कही जावेगी) रीतिसे कर्म करके उत्कटासन (इस आसनविधिको पूर्व कहे हुए आसन विधानमें देख लेना) करना उससे सब पानी बाहर निकल जाता है यह दो प्रकार की होती है एकसे गुदा शुद्धि होती है उसको मुसलमान वैद्य हकना वा अमल कहते हैं। यह बनी बनाई बिकती है। इससे वस्ति कर्म गुल्म प्लीहा. उदर और वात, पित्त कफ इनसे उत्पन्न हुए रोग सब नष्ट होते हैं। यह बस्तिकर्म भोजनके पहिले करना चाहिये पीछे भोजन को देर भी नहीं करनी चाहिये। दूसरी मूत्रेन्द्रिय की शुद्धिका यंत्र होता है इससे प्रमेह, सुजाक आदि रोगनिवृत्त होते हैं। विस्तार पूर्वक इनका वर्णन वैद्यक ग्रन्थोंमें देखना चाहिये।

३ नेतिकर्म

सूत्रं वितस्ति सुस्निग्धं नासा नाले प्रवेशयेत् ।
मुखान्निर्गमयेच्चैषा नेतिः सिद्धैर्निगद्यते ॥

(अर्थ)—अपने बालिश्त के बराबर लम्बा सूत नौ दस वा बारह तार का लेके उसको नरम वस्तु (मोम अथवा घी) लगा के उसका छोर बारीक करना, पीछे एक नाक दबा के दूसरी नाक में वह बारीक छोर डाल के पूरक करना, इससे वह भीतर गले में आ जाता है । पीछे अँगूठा और तर्जनी से उसको पकड़ के मुँह के बाहर लाना, पुनः दूसरा छोर जो नाक के बाहर है उसको दूसरे हाथ से पकड़ के स्त्रियें जैसे छाछ बिलोती हैं उस प्रकार दोनों हाथों में दोनों छोर पकड़ के आगे पीछे करना, इसको नेति कहते हैं । इससे शिर के और नाक के सब रोग दूर हो जाते हैं ।

नेति के गुण

कपाल शोधिनी चैव दिव्य दृष्टि प्रदायिनी ।
जत्रूर्ध्व जातरोगौघं नेति राशु निहन्तिच ॥

(अर्थ)—नेति कर्म से दिव्य दृष्टि (स्वच्छ दृष्टि) प्राप्त होती है और गले से ऊपर के सब रोग नष्ट हो जाते हैं ।

४ त्राटक

निरीक्षेन्निश्चल दृशा सूक्ष्म लक्ष्यं समाहितः ।
अश्रु संपात पर्यन्त माचार्यैं स्त्राटकं स्मृतम् ॥

(अर्थ)—सुफेद कागज पर काली स्याही के छोटे टिपके देके उन पर पलकों को न हिलाते हुए जब तक आँखों में पानी न आजावे तब तक बराबर देखते रहना, इसको त्राटक कहते हैं । इसके अनेक गुण हैं । यथाः—

त्राटक गुण

मोचनं नेत्र रोगाणां तंद्रा दीनां कपाटकम् ।
यत्न स्त्राटकं गोप्यं यथा हाटक पेटकम् ॥

(अर्थ)-त्राटक से सब नेत्र रोग नष्ट होकर तन्द्रा (पिनक) और आलस्य आदि नष्ट होते हैं । यह एकाग्र चित्त होनेका एकही उपाय है । इसकी क्रिया को सोनेकी मंजूषा (पेटी) के समान गुप्त रखना चाहिये । अर्थात् एकान्त (गुप्त स्थान) में करना ।

५ नौली

अमंदावर्तवेगेन तुंदं सव्याप सव्यतः ।
नतांसो भ्रामयेदेषा नौलिःसिद्धैःप्रचक्ष्यते ॥

(अर्थ)—पालथी लगाके बैठना फिर कन्धों को नीचे नमाके पेटको दाहिनेसे बाएँ और बाएँसे दाहिने शीघ्र गतिसे घुमाना इसको सिद्ध नौली कहते हैं ।

नौलीका महत्व

मन्दाग्नि संदीपन पाचनादि संधायिका नन्दकरी सदैव ।
अशेष दोषा मय शोषणीच हठक्रिया मौलिरियं च नौलिः ॥

(अर्थ)—यह पेटके मन्दाग्नि को प्रदीप्त करके दुष्ट भोजन को पचा देती है और वात, पित्त, कफ आदि सब रोग इनसे दूर होते हैं । यह नौलीकी क्रिया हठयोग षट्कर्मों में श्रेष्ठ है ।

६ कपालभाति

भस्त्रा वल्लोह कारस्य रेच पूरौ ससंभ्रमौ ।
कपालभाति विख्याता कफ दोष विशोषिणी ॥

(अर्थ)—लोहार की धौंकनी के जैसे श्वास ऊपर खींचके वैसे ही बाहर छोड़ना, इस क्रिया को कपालभाति कहते हैं । इससे सब प्रकार के कफ दोष दूर होते हैं ।

षट् कर्म निर्गत स्थौल्य कफ दोष मलादिकः।
प्राणायामं ततः कुर्याद् नायासेन सिद्धयति॥

(अर्थ)—धौति आदि ६ कर्मों से शरीरका मोटापन और वात, पित्त तथा सब प्रकारके कफ दोष दूर होनेके उपरान्त प्राणायाम करना सहज में सिद्ध होता है। किन्हीं आचार्य्यों का यह भी मत पाया जाता है कि धौति, वस्ती, नेति त्राटक, नौली कपल भाति में परिश्रम न करके भी केवल प्राणायाम द्वारा ही सिद्धि लाभ करता है कहा भी है:—

प्राणायामैरेव सर्वे प्रशुष्यन्ति मला इति।
आचार्य्याणांतु केषां चिदन्यत्कर्मनसंमतम्॥

अर्थ—प्राणायाम से ही नाड़ी मल, शुद्ध हो जाता है, इसलिए आचारीगण धौत्यादि षट् कर्म करने के सहमत नहीं हैं।

नाड़ी ज्ञान

हृदय में १०१ नाड़ियां हैं। उन १०१ नाड़ियों में से एक एक की शाखा नाड़ियां फूटती है। उन एक २ शाखा नाड़ियों की बहत्तर २ हजार प्रतिशाखा नाड़ियें होती हैं। इन सब नाड़ियों में व्यान नामी प्राण विचरता है। अर्थात् सम्पूर्ण मूल नाड़ी और प्रतिशाखा नाड़ी मिलाकर ७२७२१०२०१ नाड़ियें हुईं। आदि गिनाई हुई १०१ मूल नाड़ियों की भी मूल नाड़ी सबमें प्रधान मूल नाड़ी सुषुम्णा है। पांव से लेकर ब्रह्माण्ड में होती हुई नासिका के ऊपर भ्रूमध्य के त्रिकुटी देश में इड़ा और पिंगला नाड़ियों में जा मिली है। इड़ा नाड़ी दक्षिण भाग में रहने से दाहिनी ओर और जितनी नाड़ी हैं उन सबको इड़ा समझना, और पिंगला नाड़ी वाम भाग में रहने से बाईं ओरकी सबनाड़ियों को पिंगला समझना चाहिए। पूर्वोक्त कुल नाड़ियों में मुख्य १० नाड़िये हैं:-१ इड़ा,

२ पिंगला, ३सुषुम्ना ये प्रधान नाड़ी हैं, ४गान्धारी, ५ हस्तिजिह्वा, ६ पूषा, ७ यशस्विनी, ८ लम्बुषा, ९ कुहू, १० शंखिनी ये गौड़ हैं। स्थानों के नामः—नासिका के दक्षिण भाग में इड़ा, वाम भाग में पिंगला, इनके मध्य में सुषुम्ना रहती है। वाम नेत्र में गांधारी, दक्षिण नेत्र में हस्ति जिह्वा, दक्षिण कर्णमें पूषा, वाम कर्ण में यशस्विनी, मुखमें अलम्बुषा, उपस्थेन्द्रिय में कुहू, मूल स्थान में शंखिनी। इस प्रकार १० नाड़ियें प्राण वायु के एक २ मार्ग में आश्रम के स्थित हैं।

१० प्राणों के नाम

शरीर में १० प्राणों के द्वारा आत्मा प्रत्येक कार्य्यों का सम्पादन कराता है उनके नाम ये हैं। यथाः—१ प्राण, अपान, ३ समान, ४ उदान, ५ व्यान (ये प्रधान वायु हैं), ६ नाग, ७ कुर्म, ८ कृकल, ९ देवदत्त, १० धनञ्जय ये गौड़ नाड़ी हैं। स्थानों के नामः—प्राणवायु हृदय में अपानवायु मूलाधार (गुदा) में, समान वायु नाभि में, उदानवायु कंठ में व्यानवायु सर्वशरीर में, कृकल वायु छींकनेमें, देवदत्तवायु जृंभा (जम्हाई लाने में, धनञ्जय वायु सर्व शरीरमें। मृत शरीर में भी रहता है मरने में भी ४ घटी पर्यन्त यह शरीर में रहता है। उपरोक्त नाड़ियोंमें एक कुण्डलिनी नाड़ी है जिसका स्वरूप निम्न प्रकार हैः—

कुण्डलिनी

नाडीस्था कुंडली शक्ति भुजंगा कार शायिनी।
ततो दशो र्ध्वगा नाड्यो दशै वाधः प्रतिष्ठिताः॥

भुजंगाकार—साँपके जैसे मुड़े हुए आकार से सोनेवाली साढ़े तीन हाथ फेरेसे वेष्टित होकर नामकी शक्ति जो गुदा और लिङ्गके बीचमें है, इसके ऊपर दस और नीचे दस नाड़ी सब शरीर में हैं।

५ प्रधान वायु के कार्य्य

(क) 'प्राणवायु' जो हृदय में ठहरता है भीतर से सात (१ मुख, २ नासिका । छिद्र, २ आँख, २ कान) द्वारा बाहर निकलता और भीतर के गन्दे परमाणु बाहर फेंकता है। जब प्रथम प्राणायाम की प्रथम धारणा ब्रह्माण्ड में प्राण वायु को स्थिर करके अभ्यास करते २ परिपक हो जाती है, तब धातु क्षीण (प्रदर और प्रमेहरोग) नष्ट हो जाते हैं और पुरुष का वीर्य गाढ़ा होकर बरफ के तुल्य जमता है और स्त्री के रज का विकार भी दूर होता है तथा जठराग्नि प्रबल प्रदीप्त होकर पाचन शक्ति की वृद्धि होती है, विष्टब्ध रोग विनष्ट होता है। स्वप्नावस्था में जब स्वप्न द्वारा अपानवायु वीर्य को गिराने लगता है, तब प्राणवायु तत्क्षण ही जल्दी से योगी को जगा कर रक्षा करता है, अर्थात् उस समय योगी जाग कर "वीर्य-स्तम्भक" प्राणायाम करले (जिसकी क्रिया यो० सा० मा० के पु० ७ प्राणायाम चिकित्सा नामक पुस्तक में दर्शायी जावेगी) तो वीर्य ऊपर ब्रह्माण्ड में चढ़ जाता है, फिर वहां प्राणवायु द्वारा धारणा करने से वीर्य ब्रह्माण्ड में हिमवत् गाढ़ा होकर जम जाता है, अर्थात् प्राणवायु से वीर्य का आकर्षण और पुष्टी होती है।

(ख) 'अपान वायु' जो नाभि में ठहरता है और बाहर से भीतर आता है। वह शुद्ध वायु को भीतर लाता है, गन्दीवायु तथा मलमुत्र को गुदा और उपस्थेन्द्रिय द्वारा बाहर गिराता है। वीर्य को स्त्री गर्भाधान समय इस अपान वायु से ही ग्रहण करती है, इसके अशुद्ध होने से गर्भ स्थिति नहीं होती। वीर्य चढ़ाने का प्राणायाम अपान से किया जाता है। प्रातःकाल में शौच जाने से पूर्व योगी को दूसरा प्राणायाम जिससे कि अपान वायु नाभि के नीचे फेरा जाता है अवश्यमेव करना

चाहिये, क्योंकि इसके करने से मल झड़ता है! अपानवायु गन्दे रुधिर को भी गुदा द्वारा बाहर फेंक देता है। अपानवायु से वीर्य का स्तम्भन होता है और प्राणवायु से आकर्षण होता है।

(ग) 'समानवायु' जो हृदय से लेकर नाभि पर्यन्त के अवकाश में ठहरता है और शरीर में सर्वत्र रस पहुँचाता है, अर्थात् भोजन किये अन्न जलको पचाकर तथा रस बनाकर अस्थि, मेदा, मज्जा, चर्म बनाने वाली नाड़ियों को पृथक २ विभाग से देता है और भुक्त अन्नादि का ४० दिन पश्चात् समान द्वारा ही वीर्य बनता है।

द्र०—योगीको उचित है कि भोजन के एक घंटे उपरान्त ही जल पीना चाहिये। जिस समय समान वायु भोजन किये हुवे पदार्थ को समेट कर गोलाका रस बनाले और रस बनाने वाली क्रिया का आरम्भ करे, उस समय डकारके आनेसे जान लेना चाहिये कि जल पीने की आवश्यकता है अथवा जब प्यास की इच्छा हो पानी पीना चाहिये।

(घ) 'उदान वायु' जो कंठमें ठहरता है और जिससे कण्ठस्थ अन्नादि को खेंचा जाता और बल पराक्रम होता है अर्थात् खाये पदार्थों को कंठ से नीचेकी ओर खींच लेजाकर समान वायुको सौंप देता है। इसको यम भी कहते हैं, क्योंकि मरण समय यह अन्नादि ग्रहण करने का काम नहीं करता और मृत प्राणी के जीवात्मा को उसके कर्मोंके अनुसार यथा योग्य भोगोंके स्थान में पहुँचा देता है। सोते समय यह सत्व गुणी गाढ़ निद्रामें परमात्मा के आधार में जीवात्मा को स्थित करता है, तब जीवको आनन्द होता है। जिसको वह नहीं जानता कि ऐसा आनन्द किस कारण हुआ था। समाधि में योगी को परमात्मा से मेल कराके उसके आधार में आनन्द कराती है, तब यथावत् परमात्मा का ज्ञान होनेसे आनन्द होता है, वह वाणीसे नहीं कहा जा सकता।

(ङ) 'व्यानवायु' जो शरीर में सर्वत्र व्याप्त रहता है और जिससे सब शरीर में चेष्टा आदि कर्म जीव मनके संयोग से करता है। समान वायु का बनाया हुआ रस रुधिर होकर व्यान वायु द्वारा ही समस्त देहमें भिन्न २ नाड़ियों द्वारा फिरता है।

स्वराष्ट्र शरीरके स्वयंसेवकों के नाम

जिस प्रकार राष्ट्रीय सैन्यमें कई वीर वेतन लेकर युद्धमें जानेवाले होते हैं और कई अवैतनिक स्वयं सेवक होते हैं। परन्तु वेतन लेकर युद्ध करने वाले वीरोंकी अपेक्षा "अवैतनिक राष्ट्रीय-स्वयं सेवकों का सन्मान अधिक होता है। वैसा होना भी उचित है। अपने शरीर में उक्त प्रकार के दो वीर विद्यमान हैं। दो हाथ, दो पाँव, गुदाद्वार, मूत्र द्वार और मुख ये सात कर्मवीर हैं, तथा इनके साथ कार्य करने वाले दो नाक, दो आँख, दो कान और त्वचा ये सात ज्ञान वीर हैं। ये चौदह गण शरीर के संरक्षण के लिये बड़ा युद्ध करते हैं, परन्तु इनको खान पान आदि रूप से वेतन अवश्य देना चाहिए। यदि वेतन न दिया जायगा, तो इन से कार्य नहीं हो सकता। खान पान आदि देने पर भी ये थकते हैं और सो जाते हैं। इस लिये इनसे सतत कार्य नहीं हो सकता। इनकी अपेक्षा अवैतनिक स्वराष्ट्र शरीर के स्वयं सेवक का कार्य्य करने वाले एकादश रुद्र प्राण रूपसे इस शरीर में विद्यमान हैं। पांच प्राण-(१ प्राण, २ अपान, ३ समान, ४ उदान और ५ व्यान); पांच उप प्राण-(१ कूर्म, २ नाग, ३ कृकल, ४ देवदत्त, और ५ धनञ्जय) और एक आत्मा मिलकर ये ग्यारह महावीर होते हैं। बिना खाने पीने के, तथा आराम विश्राम और निद्रा न लेते हुए, ये वीर शरीर का संरक्षण करने के दैनिक महायुद्ध में सदा ही तत्पर होते हैं। ये महावीर इतने प्रभाव शाली होते हैं कि ये स्वयं अपना [illegible] कार्य अपनी ही शक्ति से करते

रहते हैं, साथ साथ पूर्वोक्त कर्मवीरों और ज्ञानवीरों को भी सहायता देते हैं। उक्त वीरों की जागने की तथा सोने की अवस्था में इनका एक जैसा ही निःस्वार्थ कार्य होता रहता है। इसलिए अवैतनिक कार्य करने वाले इन महावीरों का शरीर की सुस्थिति के लिये अत्यन्त उपयोग है। इनके निष्काम भाव से किये हुए कार्य से संपूर्ण शरीर की सुस्थिति होती है। इस लिये सब शरीर रूपी इस राष्ट्र में इनका महात्म्य अधिक है और इसी कारण इन महावीरों की सर्वत्र पूजा होती है।

श्वाँसोपारिप्राणियों की आयु

(प्राणि)				(प्रतिमिनट)				(आयु)
शशक	,,	,,	,,	३८	,,	,,	,,	८ वर्ष
कबूतर	,,	,,	,,	३६	,,	,,	,,	८ ,,
बानर	,,	,,	,,	३२	,,	,,	,,	२१ ,,
कुत्ता	,,	,,	,,	२८	,,	,,	,,	१४ ,,
बकरा	,,	,,	,,	२४	,,	,,	,,	१३ ,,
बिलार	,,	,,	,,	२५	,,	,,	,,	१३ ,,
घोड़ा	,,	,,	,,	१६	,,	,,	,,	५० ,,
मनुष्य	,,	,,	,,	१५	,,	,,	,,	१००,,
हाथी	,,	,,	,,	१२	,,	,,	,,	१००,,
सर्प	,,	,,	,,	८	,,	,,	,,	१२०,,
कछुआ	,,	,,	,,	५	,,	,,	,,	१५०,,

द्रष्टव्यः—यह श्वास संख्या स्वास्थ्य प्राणियों की है रोगी और दुर्व्यसनियों की नहीं है।

प्राणायाम से आयुर्वृद्धि

प्राणायाम से आयु की वृद्धि के अनेक प्रमाणों के अतिरिक्त एक स्थूल प्रमाण यह भी है जो अश्रद्धकों, अयोगियों और अविश्वासियों को भी विश्वास दिलाता है। वैद्यों ने अनुभव

से स्वस्थ मनुष्य की श्वास दिन रात्रि में २१६०० वार चलती है अर्थात् १ घंटा में ६०० व १ मिनट में १५ वार चलती है। प्राणायाम के करने से श्वांस की गति का अवरोध होकर उपरोक्त संख्या से न्यून चलने लग जाती है, इस कारण जितनी श्वांस कम चलेगी, उतना ही अधिक मनुष्य के जीवन की आशा है, परन्तु प्रत्येक मनुष्य की श्वास की संख्या विदित नहीं है, इस कारण न्यूनाधिक वय में मनुष्यों का शरीर पात हो जाता है। मानलिया जावे कि किसी की श्वांस संख्या इतनी है कि वह ६० वर्ष में सम्पूर्ण रीति से व्यय हो जावेगी, परन्तु वह प्राणायाम द्वारा प्रति दिवस १०० श्वासाही बचावेगा। तो २० वर्ष के पश्चात् जब से युवा अवस्था को प्राप्त हुवा है शेष ४० वर्ष में १४६००० श्वांस बचा सकेगा। इस प्रकार ६८ दिन की आयु उसकी ६० वर्ष से अधिक होगी। इस भाँति जितनी अधिक श्वांस बचेगी, उतना ही दीर्घजीवी होना संभव है, यही कारण है कि हमारे महर्षि गण कठिन तपस्या कर जीवन मरण पर अपना पूर्ण अधिकार रखते थे कहा है:—

यावद्बद्धो मरुद्देहे यावच्चित्तं निरामयम्।
यावद्दृष्टि र्भुवो र्मध्ये तावत्काल भयं कुतः॥

(अर्थ)—जब तक प्राणवायु कुंभक द्वारा देह में स्थिर है, तथा जब तक चित्त विषय वासना से हटा है व अन्तः करण निर्विकार है, और जब तक भ्रू मध्य में दृष्टि निश्चल है तब तक काल का भय नहीं होता।

आयु बढ़ाने के उपाय

(१) सात्वकी हलका शुद्ध तथा सद्य (ताजा) भोजन' (२) ब्रह्मचर्य, (३) वेद तथा वेदानुकूल ग्रन्थों का पठन (४) विद्वान् परोपकारी तथा सदाचारी लोगों की सेवा और सत्संगति, (५) ठीक समय सोना, जागना, भजन करना,

(६) शान्ति से रहना, (७) खान पान आदि जीवन सामग्री का सुगमता से अनुकूल प्राप्त होना, (८) आरोग्यता, (९) ईश्वरोपासना, (१०) मन का शान्त तथा निश्चिन्त रहना इत्यादि ।

आयु घटने के कारण

(१) मांस, मिर्च, खटाई, रूखा सूखा सड़ा दुर्गन्धि देर में पचनेवाला तथा कुसमय अधिक वा बहुत कम भोजन का मिलना वा तमाखू खाना आदि । (२) मद्य, अफीम, चर्स, गांजा, चन्डू, मदक, सुलफा, हुक्का, सिगार-बीड़ी, सिगरट, भंग, ताड़ी, सिरका आदि मादक, सड़े तथा बुद्धि नाशक रोगोत्पादक पदार्थों का सेवन । (३) व्यभिचार-परस्त्रीगमन, पुंस मैथुन, हस्त मैथुन, आदि कुव्यसन द्वारा वीर्य का त्याग वा नाश । (४) अति जागरण, अति निद्रा, भय, शोक, चिन्ता, रोग, निरुद्यमता, स्त्री, सन्तान आदि का दुःख, अधिक दौड़ना आदि आयु घटानेवाले कारण हैं ।

* ओ३म् *

३ प्राणविद्या ।

अथर्वण वेद के प्राण सूक्त ११।४।६ में प्राण विद्याका स्पष्ट रूपसे निम्न प्रकार उपदेश किया है:—

ईश्वर सबका प्राण है

"प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे" = जिसके आधीन यह सब जगत् है उस प्राणके लिए मेरा नमस्कार है ।

अन्तरिक्षस्थ प्राण

नमस्तेप्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे। नमस्तेप्राण विद्युते नमस्तेप्राण वर्षते ॥ २॥ = "हे प्राण ! [illegible]

को नमस्कार है, मेघोंमें नाद करने वाले तुझको नमस्कार है। हे प्राण! चमकनेवाले तुझको नमस्कार है और हे प्राण! वृष्टि करने वाले तुझको नमस्कार है।"

प्राण का कार्य्य

यत्प्राण ऋतना वा गतेऽभि क्रंद त्योषधीः। सर्वं तदा प्रमोदते यत्किंच भूम्यावधि ॥ ४ ॥ = "हे प्राण! वर्षाऋतु आते ही जब तू औषधियों के उद्देश्यसे गर्जना करने लगता है; तब सब जगत् आनन्दित होता है, जो कुछ इस पृथिवी पर है।" अर्थात् वृष्टि द्वारा प्राप्त होने वाले प्राणसे न केवल वृक्ष वनस्पत्तियां प्रफुल्लित होती हैं, परंतु अन्य जीव और प्राणी भी बड़े हर्षित होते हैं।

सर्वरक्षक प्राण

प्राणः प्रजा अनुवस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम्। प्राणोह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणिति यच्चन ॥ १० ॥ "जिस प्रकार प्रिय पुत्रके साथ पिता रहता है, उस प्रकार सब प्रजाओंके साथ प्राण रहता है। जो प्राण धारण करते हैं और जो नहीं धारण करते, उन सबका प्राण ही ईश्वर है।"

सूर्य्य चन्द्र में प्राण

प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते। प्राणोह सूर्य-श्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥ १२ ॥ "प्राण (वि-राज्) विशेष तेजस्वी है और प्राण ही (देष्ट्री) सबका प्रेरक है इसलिये प्राण की ही सब उपासना करते हैं। सूर्य, चन्द्रमा और प्रजापति भी प्राण ही हैं।"

धान्य में प्राण

प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते। यवेह प्राण आहितोऽपानो व्रीहि रुच्यते ॥ १३ ॥ "प्राण और अपानही

चावल और जौ हैं। (अनड्वान्) बैल ही मुख्य प्राण है। जौ में प्राण रक्खा है और चावल अपान को कहते हैं।"

वेदमें "अनड्वान्" यह बैल वाचक शब्द प्राणका ही वाचक है। शरीर रूपी खेतमें यह प्राणरूपी बैल ही खेती करता है और यहां का किसान जीवात्मा है। शरीर क्षेत्र है, जीवात्मा क्षेत्रज्ञ है, प्राण बैल है, और जीवन व्यवहार रूप खेती यहां चल रही है।

हंस-प्राण

एक पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन्। यदंगस तमुत्खिदेन्नैवाद्य नश्वः स्यान्न रात्रि र्नाहः स्यान्न व्युछेत्कदाचन ॥ २१ ॥ "जलसे हंस ऊपर उठता हुआ एक पांवको उठाता नहीं (अंग) हे प्रिय! यदि वह उस पांवको उठावेगा तो आज, कल, रात्रीदिन, प्रकाश और अंधेरा कुछ भी नहीं होगा।"

"हंस" नाम प्राणका है। श्वास अंदर जानेके समय "स" का ध्वनि होता है और उच्छ्वास बाहर आनेके समय "ह" का ध्वनि होता है। "ह और स" मिलकर "हंस" शब्द प्राण वाचक बनता है। उसीके अन्य रूप "अ-हंसः, सोऽहं" आदि उपासनेके लिये बनाये गये हैं। इनमें 'हंस' शब्द ही मुख्य है। उलटा शब्द बनानेसे इसीका "सोऽहं" बन जाता है, अथवा 'हंस' के साथ 'ओं' मिलानेसे 'सोऽहं, बन जाता है।

स——ह	ह——स
ओ——म्	म्——ओ [अः]
सोऽहं	हंसः

यहांपर 'ओं' शब्द आत्मा का वाचक है और 'हंस' शब्द प्राणका वाचक है। आत्माका प्राणके साथ इस प्रकारका

सम्बन्ध है। आत्मा ब्रह्माका वाचक है और ब्रह्माका वाहन हंस है। यह हंस मानस सरोवर में क्रीड़ा करता है। यहां प्राण भी हृदयरूपी अन्तःकरण स्थानीय मानस सरोवर में क्रीड़ा कर रहा है। श्वास लेते समय यह प्राण उस सरोवर में गोता लगाता है और उच्छ्वास के समय ऊपर उड़ता है। (प्रश्न) जब उच्छ्वासके समय प्राण बाहिर आता है तब प्राणी मरता क्यों नहीं? (उत्तर) जिस प्रकार हंस पक्षी एक पांव पानी में ही रखकर दूसरा पांव ऊपर उठाता है, उसी प्रकार प्राण ऊपर उठते समय अपना एक पाँव हृदय के रक्ताशय में जमाकर रखता है और दूसरे पाँव को ही बाहिर उठाता है। कभी दूसरे पाँवको हिलाता नहीं। तात्पर्य—प्राण अपनी एक शक्तिको शरीर में स्थिर रखता हुआ दूसरी शक्तिसे बाहिर आकर कार्य करता है। इस लिये मनुष्य मरता नहीं। यदि यह अपने दूसरे पाँवको भी बाहिर निकालेगा तो आज, कल, दिन रात, प्रकाश, अंधेरा आदि कुछ भी नहीं होगा अर्थात् कोई प्राणी जीवित नहीं रह सकेगा। जीवन के पश्चात् ही कालका ज्ञान होता है। इस प्रकार का यह प्राणका सम्बन्ध है। प्रत्येक मनुष्य को उत्तम विचार करके इस सम्बन्ध का ज्ञान ठीक प्रकार से प्राप्त करना चाहिये। 'हंस' शब्द के साथ प्राण उपासना का प्रकार भी इस मंत्रसे व्यक्त होता है श्वास के साथ 'स' कारका श्रवण और उच्छ्वास के साथ 'हं' कार का श्रवण करने से प्राण उपासना होती है। इससे चित्तकी एकाग्रता शीघ्रही साध्य होती है। यही "सो" अक्षर का श्रवण श्वास के साथ और "हं" का श्रवण उच्छ्वास के करने से हंस का ही जप बन जाता है। यह प्राण उपासना का प्रकार है। साम्प्रदायिक लोगोंने इन पर विलक्षण और विभिन्न कल्पनाएँ रची हैं, परन्तु मूलकी ओर ध्यान देकर झगड़ों से दूर रहना ही हमको उचित है। अब इसका और वर्णन देखिये—

अष्टा चक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्रपुरोनिपश्चा। अर्धेन विश्वंभुवनं जजान यद् स्यार्धं कतमः स केतुः॥ २२॥ "आठ चक्रों से (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, सूर्य, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्रार) युक्त, सहस्र अक्षरोंसे (मस्तिष्कमें) व्यक्त और एकही केंद्र (हृदय) जिसका है ऐसा यह प्राणचक्र आगे और पीछे चलता है। आधे भाग से सब भुवनों को उत्पन्न करके जो इसका आधा भाग शेष रहा है वह किसका चिन्ह है?" इस शरीर में आठ चक्र हैं जिनमें प्राण जाता है और विलक्षण कार्य करता है। (१) मूलाधार (मूलबंध) गुदा द्वार अधोमुख ४ दलों में (व, श, ष, स) चार अक्षरों से शोभित है। (२) 'स्वाधिष्ठान'—योनिस्थान (लिंगमूल) ऊर्ध्वमुख, षट्दल (ब, भ, म, य, र, ल,) ६ वर्णोंसे शोभित है। (३) 'मणिपूरक'—नाभिमूल ऊर्ध्वमुख, दशदल (ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ) इन दश वर्णोंसे शोभित है। (४) 'अनाहत' हृदय द्वादशदल कमल ऊर्ध्वमुख, (क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ) इन १२ बीजों से शोभित है। (५) 'विशुद्धि'-कंठ स्थान में ऊर्ध्वमुख, षोडष दल कमल (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः) इन १६ वर्णोंसे शोभित है। (६) 'आज्ञा चक्र'—भ्रूमध्यमें ऊर्ध्वमुख द्विदल, (हँसः) इन दो बीजोंसे शोभित है। (७) 'सहस्रदल'—ब्रह्मरन्ध्र में 'ओ३म्' (अ, उ, म्) इन तीन अक्षरों से शोभित है। (८) 'मनचक्र'—शिरोभाग में ब्रह्म बीजाक्षर (लँ, वँ, रँ, यँ, हँ) इन पाँच अक्षरों से शोभित है। ये आठ चक्र हैं, क्रमशः गुदासे लेकर सिरके ऊपरले भाग तक आठ स्थानों में आठ चक्र हैं। पाठके मेरु दंडमें इनकी स्थिति है। इस प्रत्येक चक्रमें प्राण जाता है और अपने अपने नियत कार्य करता है। जो सज्जन प्राणायाम करते हैं उनको अपना प्राण इस चक्र में पहुँचा है इस बातका अनुभव होता है, और वहाँ की स्थितिका भी

पता लगता है। ऊपर मस्तिष्क में सहस्रात्र चक्रका स्थान है। यहाँ मस्तिष्क का मध्य और मुख्य भाग है। प्राणका एक केन्द्र हृदय में है। इस प्रकार एक केन्द्रके साथ आठ चक्रोंमें सहस्र आरों के द्वारा आगे और पीछे चलने वाला यह प्राण चक्र है। श्वास उच्छ्वास तथा प्राण अपान द्वारा प्राणचक्र की आगे और पीछे गति होती है। प्राणका एक भाग शरीर को शक्तियों के साथ सम्बन्ध रखता है और दूसरा भाग आत्मा की शक्तिके साथ सम्बन्ध रखता है।

मैं विजयी हूँ

उन्नति चाहने वाले सज्जनों को उचित है कि सब प्रकार के दुर्व्यसन, भ्रम, आलस्य, छल कपट आदि इन बुरे रास्तों से अपने आप को बचावें। अपने विषय में किस प्रकार की भावना करनी चाहिए इसका उपदेश निम्न मंत्र में किया है— अर्थात् मैं विजयी हूँ।

सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणो अन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम्। अस्तृतो नामाहमयमस्मि स आत्मानं निदधे द्यावा पृथिवीभ्यां गोपीथाय॥ अथ० ५।९।७ "सूर्य मेरा नेत्र है, वायु मेरा प्राण है, अन्तरिक्षस्थ तत्त्व मेरा आत्मा है, पृथिवी मेरा स्थूल शरीर है। इस प्रकार मैं अपराजित हूँ। मैं अपने आप को द्यु (आकाश) और पृथिवी लोक के अन्तर्गत जो कुछ है उस सबके संरक्षण के लिये अर्पण करता हूँ!"

आत्मशक्ति का विकाश करने के लिये समष्टि की भलाई के लिये अपने आप को समर्पित करना चाहिये। और अपने आन्तरिक शक्तियों के साथ बाह्य देवताओं का सम्बन्ध देखाना चाहिये। इतना ही नहीं प्रत्युत बाह्य देवताओं के अंश अपने शरीर मे रहे हैं, और बाह्य देवताओं के सूक्ष्म अंशों का बना हुआ मैं एक छोटा सा पुतला हूँ, ऐसी भावना धारण

करके अपने आपको देवताओं का अंश रूप, तथा अपने शरीर को देवताओं का संघ अथवा मंदिर समझना चाहिये। योग साधन में यही भावना मुख्य है। अपने आपको निकृष्ट और हीन दीन समझना नहीं चाहिये परन्तु मैं अपराजित हूँ, मैं शक्ति शाली हूँ, इस प्रकार की भावना धारण करना चाहिए। प्राणायाम करने वाले सज्जन को तो अत्यन्त आवश्यक है कि अपने शरीर को देवताओं का मन्दिर, ऋषियों का आश्रम समझे और अपने आपको उसका अधिष्ठाता तथा परमात्मा का सहचारी समझे। अपनी भावना जैसी होगी वैसा ही अनुभव आ सकता है। जिसके जैसे विचार होंगे वैसी ही उसकी अवस्था बनेगी। इसलिये अपने विषय में कदापि तुच्छ बुद्धि धारण करना उचित नहीं है।

वृद्धता का धन

प्रविशतं प्राणापाना वनड्वाहा विव व्रजम्। अयं जरिम्णः शेवधिर रिष्ट इह वर्धताम्॥ अथ० ७।५३।५॥

आते प्राणं सुवामसि परायक्ष्मं सुवामिते। आयुर्नो विश्वतो दधदयमग्निर्वरेण्यः॥ अथ० ७।५३।६॥

"जिस प्रकार बैल अपने स्थान पर वापस आते हैं, उस प्रकार प्राण और अपान अपने स्थान पर आजावें। वृद्धावस्था का जो खजाना है वह यहाँ कम न होता हुआ बढ़ता रहे। तेरे अंदर प्राण को प्रेरित करता हूँ और बीमारी को दूर फेंकता हूँ। यह श्रेष्ठ अग्नि हम सब को सब प्रकार से दीर्घ आयु देवें।"

बैल शाम के समय वेग से अपने स्थान पर आ जाते हैं। उस प्रकार के बल युक्त वेग से प्राण और अपान अपने अपने स्थान में रहें। जब प्राण और अपान बलवान बन कर अपना अपना कार्य करेंगे तब मृत्यु का भय नहीं हो सकता और मनुष्य दीर्घ आयुष्य रूपी धन प्राप्त कर सकता है। सब धनों

में आयुष्य रूपी धन ही सब से श्रेष्ठ है, क्योंकि सब अन्य धनों का उपयोग इसके होने पर ही हो सकता है। उक्त मंत्र में "जरिम्णः शेवधिः इहवर्धतां" ॥७।५३।५ अर्थात् "वृद्ध आयु का खजाना यहाँ बढ़ता रहे"। ये शब्द स्पष्टता से बता रहे हैं कि आयु निश्चित नहीं, प्रत्युत बढ़ने वाली है।

उन्नति ही तेरा मार्ग है

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।
आहिरोहेमममृतं सुखंरथमथजिर्विर्विदथमावदासि ॥ अथ०८।१।६

"हे मनुष्यो! तेरी गति (उद्यानं) उन्नति की ओर ही होनी चाहिये। कभी भी (अव यानंत) अवनति की ओर होनी नहीं चाहिए। तेरे दीर्घ आयुष्य के लिये मैं बल का विस्तार करता हूँ। इस सुखमय शरीर रूपी अमृतमय रथ पर (आरोह) चढ़ो। और जब तुम दीर्घ आयु से युक्त हो जाओगे तब (विदथं) सभाओं में (आवदासि) संभाषण करोगे।" अर्थात् प्राणायामादि साधनों द्वारा दीर्घ आयु उत्तम आरोग्य, अद्वितीय बल, सूक्ष्म बुद्धि और विशाल मन प्राप्त करने के पश्चात् मनुष्य को अपना जीवन सार्वजनिक हित साधन करने में लगाना चाहिए।

यम के दूत

कृणोमिते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति। वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतोपसेधामि सर्वान्॥ अथ० ८।२।११॥

"मैं तेरे अंदर प्राण और अपान का बल, दीर्घ आयु, (स्वस्ति) स्वास्थ्य आदि सब अच्छे भाव, वृद्धावस्था के पश्चात् योग्य समय में मृत्यु आदि स्थापन करता हूँ। वैवस्वत यम के द्वारा भेजे हुए यम दूतों को मैं धूंड़ धूंड़ कर दूर करता हूँ॥ इस मंत्र में प्राण साधन करके जो विलक्षण सिद्धि प्राप्त होती है उसका वर्णन है। प्राण का बल प्राप्त करने से सब

प्रकार का स्वास्थ्य, दीर्घ आयु, बल तथा योग्य काल में मृत्यु हो सकता है। परन्तु प्राण का बल न होने की अवस्था में नाना प्रकार के रोग, अल्प आयु, अशक्तता और अकाल मृत्यु होते हैं। इससे प्राणायामादि द्वारा प्राण की शक्ति बढ़ाने की आवश्यकता स्पष्ट सिद्ध होती है। प्राणायाम के अनुष्ठान से मनुष्य इतना बल प्राप्त कर सकता है कि जिससे वह यमदूतों को भी दूर भगा सकता है। इतना सामर्थ्य प्राप्त होता है इस लिये ही सब श्रेष्ठ पुरुष प्राणायाम का महत्व वर्णन करते हैं।

अथर्वा = योगी का सिर

मूर्धा नमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं चयत्। मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत्पव मानोऽधि शीर्षतः ॥ २६ ॥ तद्वा अथर्वणः शिरो देव-कोशः समुब्जितः। तत्प्राणो अभिरक्षति शिरो अन्नमथो मनः॥२७॥ यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृते नावृतां पुरम्। तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥२८॥ नवैतं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा। पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥३०॥ अष्ट चक्रा नवद्वारा देवानां पुरयोध्या। तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥३१॥ तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते। तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्म विदोविदुः ॥ ३२ ॥ प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा सं परिवृताम्। पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा प्रविवेशा पराजिताम् ॥ ३३ ॥ अथ० १०।२

"(अ-थर्वा) स्थिर चित्तयोगी अपने (मूर्धानं) मस्तिष्क के साथ हृदयको सीता है, और सिरके ऊपर अपने (पवमानः) प्राणको भेज देता है। वह ही अथर्वाका सिर है कि जिसको देवोंका कोश कहा जाता है। उसका रक्षण प्राण, अन्न और मन करता है। अमृतसे परिपूर्ण इस ब्रह्मकी नगरी को जो जानता है उसको ब्रह्म और इतर देव चक्षु, प्राण और प्रजा देते हैं। वृद्धावस्था के पूर्व चक्षु और प्राण उसको छोड़ते नहीं,

जो इस ब्रह्मपुरी को जानता है, और जिसमें रहने के कारण आत्मा को पुरुष कहते हैं। आठ चक्र और नौ द्वारोंसे युक्त यह देवोंकी अयोध्या नगरी है, इसमें तेजस्वी कोश है वह ही देदीप्यमान स्वर्ग है। तीन आरों से युक्त और तीन स्थानों पर रहे हुए उस तेजस्वी कोशमें जो पूज्य आत्मा है उसको ब्रह्मज्ञानी लोग जानते हैं। इस देदीप्यमान, मनोहर यशस्वी और अपराजित नगरी में ब्रह्म प्रवेश करता है।"

योग साधन करने वालोंके लिये यह उपदेश अमूल्य है। इसमें सबसे पहिली बात यह कही है कि हृदय और मस्तिष्क को एक रूप बनाना। हृदयका धर्म भक्ति है और मस्तिष्क का धर्म विचार है। भक्ति और विचार का विरोध नहीं होना चाहिए। दोनों एक ही कार्यमें सम अधिकार से प्रवृत्त होने चाहिए। जहाँ ये दोनों केंद्र विभक्त होते हैं। उसमें दोष उत्पन्न होते हैं। धर्ममें विशेषतः मस्तिष्ककी तर्कना और हृदयकी भक्ति को समान स्थान मिलना चाहिए। जिस धर्ममें इनको समान स्थान नहीं होता, उस धर्ममें बड़े दोष होते हैं। शिक्षा विभागमें भी मस्तिष्क और हृदयका सम विकास होने योग्य शिक्षा होनी चाहिए। जिस शिक्षा में केवल मस्तिष्क की तर्क शक्ति बढ़ती है उस शिक्षा प्रणाली से नास्तिकता उत्पन्न होती है और जिससे केवल भक्ति बढ़ती है उस प्रणाली से अंध विश्वास बढ़ता है। इसलिए तर्क और भक्ति का सम विकास होने से दोनों दोष दूर होते हैं और सब प्रकार की उन्नति होती है। योग साधन करनेवालेको उचित है कि वह अपने में मस्तक की तर्क शक्ति और हृदय की भक्ति सम प्रमाण में विकसित करे। यही भाव "मूर्धा और हृदय को सीने" के उपदेश में है। दोनोंको सीकर एक करना चाहिए और दोनों को मिला कर आत्मोन्नति कार्य में [illegible] करना चाहिए।

ब्रह्मलोक की प्राप्ति

"मस्तिष्क के ऊपर के स्थान में प्राण को प्रेरित करना" यह दूसरा उपदेश उक्त मंत्रों में है। मस्तिष्क में सहस्रार चक्र है और इसके नीचे पृष्ठवंश के साथ कई चक्र हैं। प्राणायाम द्वारा नीचे से एक एक चक्र में प्राण भरने की क्रिया साध्य होती है। और सबसे अन्त में इस मस्तिष्क के सहस्रार चक्र में प्राण भेजा जाता है, इस अवस्था से पूर्व पृष्ठवंश के नाड़ियों में प्राण का उत्तम संचार होता है। तत्पश्चात् मस्तिष्क के सहस्रार चक्र में प्राण पहुँचता है और ब्रह्म रन्ध्र तक प्राण की गति होती है। यह प्राण का सर्वोत्तम गति है। यही ब्रह्मलोक होनेसे, तथा इस स्थान के प्राणके साथ आत्मा की गति होनेसे इस अवस्था में मुमुक्षुको ब्रह्मलोक प्राप्ति होती है। इसलिए इस अवस्था को सबसे श्रेष्ठ अवस्था कहते हैं। यह सबसे श्रेष्ठ अवस्था प्राणायामके नियमपूर्वक अभ्यास से प्राप्त होती है, इस कारण यह योगियोंको प्राप्त होनेवाली अवस्था है। ब्रह्मकी नगरी हृदयमें है। और उसमें अमृत है। यह अमृत देव प्राशन करते हैं और पुष्ट होते हैं। इस प्रकार प्राणायाम द्वारा अपने आत्माकी शक्ति विदित होते ही सुप्रजा निर्माण शक्ति, दीर्घ आयु और बलवान इन्द्रिय ये तीन फल अपने हृदयका तथा वहांकी आत्मशक्तिका ज्ञान प्राप्त करनेवालेको होते हैं। आठ चक्र और नौ द्वारों संयुक्त यह देवताओं की नगरी है इसका नाम "अयोध्या" है। जिसमें देव भावना और आसुरी भावनाओंका संग्राम नहीं होता, अर्थात् जहां दैवी वृत्ति ही सदा शांतिके साथ निवास करती है। इसलिए उसका नाम "अ-योध्या" नगरी है। जब तक यह नगरी देवों के आधीन होती है तब तक उसमें शांतिका राम राज्य हो जाता है। इन्द्रियोंके नौ द्वार हैं और इसमें पृष्ठवंशमें मूलाधार आदि

आठ चक्र हैं। इस नगरीमें हृदय स्थानमें प्रकाशमय स्वर्ग है। वह ही प्राणायामादि साधनों के द्वारा प्राप्तव्य स्थान है। इस नगरीमें जो पूजनीय देव है वह ही आत्मा राम है, उसको ब्रह्मज्ञानी लोग ही जानते हैं। अन्योंको उसका पता नही लग सक. इस यशस्वी नगरी में विजयी ब्रह्मा प्रवेश करता है। जीवात्मा जब आसुरी भावनाओं पर विजय प्राप्त करता है तब वह अपनी राजधानी में विजयोत्सव करता हुआ प्रवेश करता है। यह राजधानी अयोध्या नगरी यशसे परिपूर्ण है, दुःखों का हरण करने वाली है और तेज से प्रकाशित है। इसका पराजय आसुरी भावनाओं के द्वारा कभी हो ही नहीं सकता। इसलिए इसका नाम ही "अपराजित अयोध्या" है। अपने हृदय की इस शक्ति को जानना चाहिए। मैं अपराजित हूं। दुष्ट भाव से मैं कभी पराजित नहीं हो सकता। मैं सदा विजयी ही रहूँगा। मेरानामही "विजय" है। मैं हीनदीन दुर्बल और अधम हूँ' इस प्रकार का भाव कदापि मन में धारण नहीं करने चाहिये। ये अवैदिक भाव हैं। इनमंत्र में आत्माका विजयी स्वरूप बताया है, आशा है कि वैदिक धर्मी सज्जन इस भाव का धारण करेंगे। अर्थात् आत्माही ब्रह्म है, वह हृदय कमल में निवास करता है' हंस अर्थात प्राण उसका वाहन है, आदि वर्णन पूर्व स्थल में आ चुका है। यह ब्रह्म की नगरी है, यही देवों की अमरावती है यही सब कुछ है। पाठक प्रयत्न करके अपने अंदर इस शक्ति का अनुभव करें और अपना विजय संपादन करें। यही चारो वेदोंका सार रूप उपदेश मनुष्यमात्रके कल्याणार्थ परमपिता परमात्माने दिये हैं।

प्राणकी श्रेष्ठता

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्। प्राणाध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। प्राणे न जातानि जीवन्ति। प्राणंप्रयंत्यभि संविशंतीति॥ तै० उ० ३।३

"प्राणही ब्रह्म है" क्योंकि प्राणसे ये सब भूत उत्पन्न होते हैं, प्राणसे जीवित रहते हैं और अन्त में प्राण में ही जा कर मिल जाते हैं।" प्राणशक्ति सर्वत्र व्यापक है और सबके अन्दर रहती हुई सबका धारण पोषण कर रही है। प्रजापति परमात्माने सबसे प्रथम जो दो पदार्थ उत्पन्न किये उनमेंसे एक प्राण है और दूसरी रयि है। इस विषयमें देखिये—

समिथुनमुत्पादयते। रयिंचप्राणंच ॥ ४ ॥ आदित्यो हवै प्राणोरयिरेव चंद्रमा रयिर्वा एतत्सर्वं यन्मूर्त्तं चामूर्तंच तस्मान्मूर्तिरेव रयिः ॥ ५ ॥ प्रश्न० उ० १॥

परमेश्वरने सबसे प्रथम स्त्री पुरुषका एक जोड़ा उत्पन्न किया। उसमें एक प्राण है और दूसरी रयि है। जगत् में आदित्य ही प्राण है और चंद्रमा तथा मूर्तिमान जगत् जितने दृश्य और अदृश्य पदार्थ मात्र हैं, रयि है।" अर्थात् एक प्राण शक्ति और दूसरी रयि शक्ति सबसे प्रथम उत्पन्न हुई। इसका भाव निम्नकोष्टकसे ज्ञात होगा, देखिये—

प्राण——रयि
आदित्य——चंद्रमाः
पुरुष——स्त्री, प्रकृति
Positive Negative

जगत् के ये दोनों माता पिता हैं, इनसे सृष्टि की उत्पत्ति हुई है। संपूर्ण जगत में इनका कार्य है। सूर्य माला में सूर्य प्राण है, अन्य चन्द्र आदि रयि है, शरीर में मुख्य प्राण है और अन्य स्थूल शरीर रयि है, देह में सीधी बगल प्राण है और बांई बगल रयि है। इस प्रकार एक दूसरे के अंदर प्राण और रयि शक्तियाँ व्यापक हैं; किसी स्थान पर ये दोनों शक्तियाँ नहीं है ऐसा नहीं है; सर्वत्र रह कर सब स्थिर चर में इनका कार्य हो रहा है; इसको देखने से प्राण की सर्वव्यापकता का पता लग सकता है। [illegible]

है कि "कतम एको देव इति प्राण इति" बृ० ३।९।९ = "एक देव कौनसा है? प्राण है।" अर्थात् प्राण ही सब से मुख्य और श्रेष्ठ देव है।

प्राण कहा से आता है

आदित्य उदयन् यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते। यद्दक्षिणांयत्प्रतीचींयदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरा दिशोयत्सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते॥ प्रश्न० उ० १।६-८

"सूर्य का जब उदय होता है तब सब ही दिशाओं में सूर्य किरणों के द्वारा प्राण रक्खा जाता है। इस प्रकार सर्वत्र सूर्य किरणों के द्वारा ही प्राण पहुँचता है॥" "सएष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणे ऽग्निरुदयते। तदे तदृचाभ्युक्तम्॥ ७॥ प्र० उ० अर्थात् यह सूर्य ही प्राण रूप वैश्वानर अग्नि है॥ यह सूर्य का वर्णन बता रहा है कि सूर्य का प्राण के साथ क्या सम्बन्ध है। सूर्य्य किरणों के विना प्राण की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस सूर्य मालिका का मूल प्राण यह सूर्य देव ही है। सूर्य प्रकाश का हमारे आरोग्य के साथ कितना घनिष्ट सम्बन्ध है इसका पता लग सकता है। जो लोग सदा अंधेरे स्थान में रहते हैं, सूर्य प्रकाश में क्रीड़ा नहीं करते, सूर्य के प्रकाश से अपना आरोग्य नही संपादन करते हैं, और अपने आरोग्य के लिये वैद्यों हकीमों और डाक्टरों के घर भरते रहते हैं 'विषरूप दवाइयाँ पीते हैं' उनकी अज्ञानता की सीमा कहाँ है? परमात्मा ने अपार दया से सूर्य और वायु उत्पन्न किया है, और उनसे पूर्ण आरोग्य संपादन हो सकता है। योग्यरीति से प्राणायाम द्वारा उनका सेवन किया जायगा तो स्वभावतः ही आरोग्य मिल सकता है। इतनी सरलता से आरोग्यता की विधि होने पर भी मनुष्य ऐसी अवस्था तक आ पहुंचे हैं कि अनन्त सम्पति का व्यय करने पर भी उनको आरोग्यता नहीं प्राप्त होता।

प्राणका प्रेरक

केन प्राणः प्रथमः प्रैतियुक्तः ॥ केन उ० १।१ (प्रश्न)
"किससे नियुक्त होता हुआ प्राण चलता है ?" (उत्तर)
स उ प्राणस्य प्राणः "यह आत्मा प्राण का प्राण है" अर्थात् प्राण का प्रेरक आत्मा है। इसका भाव यह है कि इस आत्मा का सेवक प्राण है यह प्राणवायु का पुत्र है यही "मारुती" है, मारुतिका अर्थ 'मारुत्' अर्थात् वायुका पुत्र। विश्वमें व्यापने वाला पवनवायु है उसका एक अंश शरीरमें अवतार लेता है, इसलिये इसका 'पवनात्मज' कहते हैं। यही हनुमान, मारुती, रामसखा है। अवतारकी मूल कल्पना यहां व्यक्त हो सकती है। विश्वव्यापक शक्तियां अवतार रूपसे कर्म भूमिमें अर्थात् इस देहमें आकर कार्य करती हैं। वायुके पुत्रोंकी जो कल्पना पौराणिक वाङ्मयमें है वह यही है। इसको चिरजीव कहा है, इस प्रकार यह हनुमानजीका रूपक है। अर्थात् हनुमानजीकी उपासना मूलमें प्राणोपासना ही है। यह "दशरथके राम" का सहायक है, दश इन्द्रियोंके रथमें जो आनन्दरूप आत्मा है उसका यह प्राण नित्य सहायक ही है। तथा "दशमुखकी लंका" को जलानेवाला है, दश इन्द्रियों से मुख्यतया भोगमें जो प्रवृत्ति होती है उनका प्राणायामके अभ्याससे दहन होता है। इत्यादि विचारसे पूर्वोक्त कल्पना अधिक स्पष्ट होगी।

अंगोंका रस

शरीरके अङ्गमें एक प्रकारका जीवनका आधार रूप रस है। इसका वर्णन निम्न मंत्रमें है—

"आंगिरसोऽङ्गाना हि रसः प्राणो वा अंगानां रसः" बृ० १।३।१९ अर्थात् "प्राण ही अङ्गोंका रस है।" जीवात्माकी इच्छासे प्राणके द्वारा यह रस सब शरीरमें घुमाया जाता है

और प्रत्येक अंगमें आरोग्य और बल बढ़ाया जाता है। प्रबल इच्छा शक्ति द्वारा आरोग्य सम्पादन करनेका उपाय इससे विदित होता है। अर्थात् आत्माकी प्रेरणा प्राणमें होती है, प्राणसे मन संलग्न रहता है, मनसे इच्छा शक्तिका नियमन होता है, इच्छासे रुधिरमें परिणाम होकर इसके द्वारा सम्पूर्ण शरीरमें इष्टकार्य होता है। देखिये—

पुरुषस्य प्रयतो वाङ् मनसि संपद्यते, मनः प्राणे, प्राणस्ते जसि, तेजः परस्यां देवतायाम्॥ छां० उ० ६।८।६

"पुरुष की वाणी मनमें, मन प्राणमें प्राण तेज में, और तेज पर देवता में संलग्न होता है।" यही परंपरा है। पर देवता का तात्पर्य यहाँ आत्मा है, प्राणविद्या की परम सिद्धि इस प्रकार से सिद्ध होती है।

प्राण और अन्य शक्तियाँ

प्राण के अधीन अनेक शक्तियाँ हैं, उनका प्राण के साथ सम्बन्ध देखने के लिये निम्न मंत्र देखिये—

प्राणो वावसंवर्गः। सयदा स्वपिति, प्राणमेव वागप्येति, प्राणं चक्षुः, प्राणं श्रोत्रं, प्राणं मनः, प्राणोह्येवैतान् सं वृंक्ते छां० ४।३।३

"जब यह सोता है तब वाक्, चक्षु, श्रोत्र, मन आदि सब प्राण में ही लीन होती हैं क्योंकि प्राण ही इनका संवारक है।" जिस प्रकार सूर्य उगते, समय उसके किरण फैलते हैं और अस्त के समय फिर अन्दर लीन होते हैं, इसी प्रकार प्राणरूपी सूर्य का जागृति के प्रारम्भ में उदय होता है उस समय उसकी किरणें इन्द्रियाँदिकों में फैलती हैं और निद्रा के समय फिर उसी में लीन होती हैं। इस प्रकार प्राण का सूर्य होना सिद्ध होता है। इसका सादृश्य एक अंश में है, यह बात भूलना नहीं चाहिये। सूर्य के समान प्राण भी कभी अस्त नहीं होता,

परन्तु अस्त और उदय ये शब्द हमारी अपेक्षा से उसमें प्रयुक्त हो रहे हैं। इस विषय में निम्न मंत्र और देखिये—

पतंग = मन

सयथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो, दिशं दिशं पतित्वा, अन्य त्रायतनमलब्ध्वा, बंधन मेवोपश्रयत एवमेवखलु, सोम्य, तन्मनो दिशं दिशं पतित्वा, ऽन्यत्रा यतन मलब्ध्वा, प्राण मेवो पश्रयते, प्राण बन्धनं हि सोम्य मनः ॥ छां० उ० ६।८.२

"जिस प्रकार पतंग, डोरी से बंधा हुआ, अनेक दिशाओं में घूम कर दूसरे स्थान पर आधार न मिलने के कारण, अपने मूल स्थान पर ही आ जाता है, इसी प्रकार निश्चयसे, हे प्रिय शिष्य वह मन अनेक दिशाओंमें घूम घूमकर, दूसरे स्थानपर आश्रय न मिलने के कारण, प्राणका ही आश्रय करता है क्योंकि; हे प्रिय शिष्य ! मन प्राण के साथ ही बंधा है।" इस प्रकार का मन के साथ सम्बन्ध है, यही कारण है कि प्राणायाम से प्राण बलवान होने पर मन भी बलिष्ठ होता है, प्राणका निरोध होने से मन का संयम होता है। प्राण की चंचलता से मन चंचल होता है और प्राण की स्थिरता से मन भी स्थिर होता है। इससे प्राणायाम का महत्व और उसका मन के संयम के साथ सम्बन्ध विदित हो सकता है। प्राण से मन का संयम होने के कारण अन्य इन्द्रियाँ भी प्राण के निरोध से स्वाधीन होती हैं, यह स्पष्ट ही है, क्योंकि प्राण से मन का संयम, और मन के वश होने से अन्य इन्द्रियों का वश होना स्वाभाविक ही है। इस प्रकार प्राणायाम से संपूर्ण शक्तियां वशीभूत हो जाती हैं। अब प्राण का महत्व वर्णन करते हैं—

प्राणोह पिता, प्राणो माता, प्राणो भ्राता, प्राणःस्वसा प्राण आचार्यः प्राणो ब्राह्मणः ॥ छां० उ० ७।१५।१

"प्राण ही माता, पिता, भाई, बहन, आचार्य, ब्राह्मण आदि है।" ये सब प्राण का महत्व बता रहे हैं। (१) माता—मान्य हित करनेवाला, (२) पिता-पाता, पालक, संरक्षक, (३) भ्राता--भरण पोषण करनेवाला, (४) स्वसा--(सु + असा) उत्तम प्रकार रखनेवाला, (५) आचार्य—आत्मिक गुरु है, क्योंकि प्राण के आयाम से आत्मा का साक्षात्कार होता है इसलिए, (६) ब्राह्मण—यह ब्रह्म के पास ले जानेवाला है। ये शब्दों के मूल भाव यहां प्राण के गुण बता रहे हैं। यह प्राण का वर्णन है, इतना प्राण का महत्व है इसलिये अपने प्राण के विषय में कोई भी उदासीन न रहे। सब लोग स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छा करते हैं वह स्वर्ग प्राण है। देखिये—

तीन लोक

वागेवायं लोकः मनो अंतरिक्ष लोकः प्राणोऽसौ लोकः॥ बृ० १।५।४

"वाणी यह पृथिवी लोक है, मन अंतरिक्ष लोक है और प्राण वह स्वर्ग लोक है। इसलिए ही प्राणायाम के अभ्यास से स्वर्ग धाम की प्राप्ति होती है।

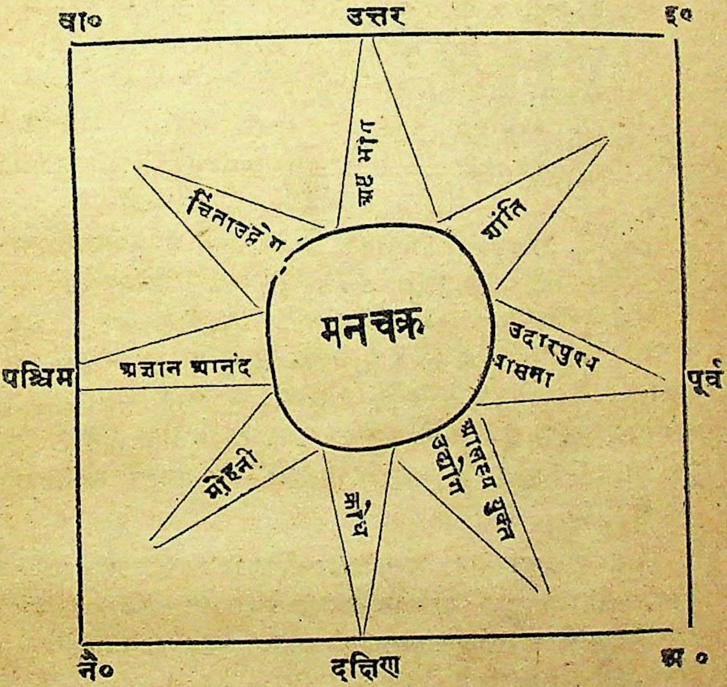
मन और प्राण का सम्बन्ध

सोमा पूषणा रजसो विमानं सप्त चक्रं रथमविश्व मिन्वम्।
विषुवृतं मनसा युज्य मानं तं जिन्वथो वृषणापञ्चरश्मिम्॥
ऋ० २।४०।३

"हे (सोमा पूषणा) प्राण और अपान आप प्रकाश पृथिवी और धनों के निमित्त हो आप सब की रक्षा करने वाले परमात्मा का विज्ञान करने वाले हो नाशरहित पदार्थों के मध्य भाग को प्रगट करनेवाले होनेसे सबसे भीतर स्थित हो आप चन्द्र और औषधि गणों के साथी होते हैं तब ही विद्युत् वा सूर्य शक्ति प्रेरक भूमियों के बीच पके पदार्थ को उत्पन्न कर

संसार को सुखी करानेवाली होती है उक्त गुणवान् धारण और पुष्टिकारक अग्नि वायु आप (रजसो विमान) लोके समूह के अन्तरिक्ष में गमन करने वाले लोक लोकान्तर वा प्राणिओं के शरीर हैं जिसमें (सप्त चक्ररथम्) सात चक्रों के रमणीय व्यवहार होते हुए वे चक्र (अविश्वऽमिन्वम्) विश्वरूपको (पिंड अवस्थाको) न प्राप्त हुए समस्त पदार्थोंको अलग करते हैं उन सप्त चक्र रथको (मनसा) अन्तःकरणस्थ विचारों से मन (विशुवृत्तम्) व्यापक गमन कार्य में वर्तमान होकर (युज्यमानं) युक्त किया करता है (तम्) उसको (वृषणापञ्च रश्मिम् जिन्वथ) बलिष्ठ सोमापूषण आदित्य देवता धर्मवान् मन पांच रश्मि के तुल्य विद्यमान् प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान रथसे (जिन्वथः) चलाता है। मन की कार्य निर्वाहक कचेहरी की स्थापन मूर्द्धामें है और सब प्राणिमात्र मूर्द्धासे मनुष्यों की मूर्द्धा श्रेष्ठ होने से मन के कचेहरी का कार्य क्रम मानुषी मूर्द्धामें देखनेसे मन का श्रेष्ठ कार्य ज्ञात होगा। मनुष्यों के शिरोभाग को कपाल यह भी संज्ञा है। मनुष्यों के कुल शिरो अस्थि के आठ भाग करके उनमें कुल शरार के पुरोडाश—अन्न वा धारण कार्य होता है और उस कार्यका व्यवहार जिस मन चक्र से होता है उसका चित्र प्रथम बतलाया जाता है।

अष्टदल मन चक्र ।



मनचक्र का स्थान शिरोभाग है और मन देवता का स्थान हृदय है। आत्मा के संदेशा के अनुकूल, मन देवता मनचक्र के जिस दल (बीज) के साथ वर्तमान होकर व्यवहार चलाती है उस दल के वस्तु स्थिति के अनुसार शरीर इन्द्रियादि व्यापार होते हैं। उस मन देवता का बर्ताव निम्न प्रकार जानना चाहिए:—

१-पूर्वदल में होता—श्वेत=धैर्य, औदार्य, धर्म बुद्धि होती है।

२-आग्नेय—रक्त=प्रमाद. आलस्य; मंद बुद्धि।
३-दक्षिण—कृष्ण=दुष्ट बुद्धि. क्रोध, द्वेष।
४-नैऋर्त्य—नील=मोहिनी, स्त्री, पुत्र, वित्तादि. मोह।
५-पश्चिम-कपिल, धुम्रवर्ण=अज्ञानानन्द. हास्य.विनोद।
६-वायव्य-हरा-श्याम=चिन्ता. उद्वेग, भटकरणे. वैराग्य।
७-उत्तर—पित्त=अष्टभोग, शृंगार, भोगादि में प्रेम।
८-ईशान—पिंगल, गौर=शान्ति, कृपा, क्षमा, शांति ज्ञान।

सन्धि भाग में मिश्रवर्ण होते हैं वहां मन व्यवहार करता तब व्याधि ग्रस्त कर देता है और मध्यभाग पुण्डरीक आकाश है जो हृदयस्थान है वहां मन वर्तमान रहता है तब शान्ति समाधि चैतन्यमति होती है। अष्टदलचक्र के साथ मन का व्यवहार है। उन अष्टदल में असंख्य अविनाशी शक्तियों का समावेश होता है। इस अष्टदल चक्र का स्थान मनुष्यों के शिरोभाग में होने से मनुष्यों के शिर को कपाल संज्ञा दी गई है।

अष्टा कपालाः सर्वे पुरोडाशाभवन्ति। अष्टाक्षरावै गायत्री गायत्रमग्निश्छन्दः। स्वेनैवैनमेतच्छन्दसाधत्ते तानि सर्वाणि चतुर्विँ शतिः कपालानि सम्पद्यन्ते चतुर्विँ शत्यक्षरा वै गायत्री॥ शत० २।२।१।१७

अर्थात् अष्टाक्षरा गायत्री और त्रिकपाल अग्नि से विश्व का संपूर्ण पुरोडास-अन्न का धारण हो रहा है। त्रिकपाल अग्नि ही मन है जिसमें विश्व की संपूर्ण क्रिया शून्यरूप में (बीज वा केन्द्र) ही है, उस मन का सवन-ज्ञान, प्रसव, कर्म आठ अक्षर से गायत्री वा प्राण विद्या द्वारा होता है। गायत्री यह शब्द ही बतलाता है कि यह प्राणों से सम्बन्ध रखने वाली है। साहैषा गयांस्तत्रे प्राणा वैगयास्तत्प्राणास्तत्रे तद्यद् गयांस्तत्रे तस्माद् गायत्री नाम॥ बृ० उ० अ० ब्रा० १४ कं० ४ "गया

नाम प्राणों का है त्रेङ् पालने धातु से त्र, त्री आदि शब्द बनते हैं। गया नाम प्राणों की जो रक्षा करे वह गायत्री कहाती है, जिस प्रकार इस ऋचा से प्राणों की रक्षा की है अतः इसका गायत्री नाम हुआ, मन का ज्ञान, अस्तव, कर्म = गायत्री वा प्राणविद्या द्वारा होता है। उस गायत्री के आठ अक्षर वेही मन-चक्र के अष्टदल स्वरूप होता है। कुल शिरोभाग के अस्थियों के २४ भाग करके गायत्री के २४ वर्णों के साथ उनका मेल मिलाया जाता है और गायत्री त्रिकपालाग्नि होने से ८ × ३ = २४ × २ = ४८ अड़तालिस वीजरूप सत्ता के अन्तर्गत असंख्य शक्ति का समावेश किया है। बिचारदृष्टि के द्वारा देखने से जगत् जो अनन्त शक्ति का एक भावरूप है उसका सद्बोध हो जाता है। मनुष्यों के कपाल को सहस्रदलपद्म भी कहा जाता है। कारण पद्म का तत्व संकोच और विकाश रूप है ठीक वैसी इस कपाल में अनन्त सत्ता बीज रूप में स्थित है और सोम के (चन्द्र के) दर्शन से पद्म विकसित होता है इसी प्रकार कुल जगत् का सोम जो परमात्मा है उस सोम का हृदय रूप पुंडरीक वा कमल पर प्रकाश पड़ता है तब उन अनन्त सत्ता का विकाश होता है। कपाल शास्त्र का सुव्यवस्थित ज्ञान होने के लिये इन अनन्त शक्तियों का समावेश आठ भाग में करके एक २ भाग को कपालास्थि यह संज्ञा दी गई है और इन आठ कपाल में जो अनन्त सत्ता है उसका पचास (५०) सत्ता में समावेश करने से कपाल शास्त्र का विषय सर्व सामान्य और सुलभ हो गया है, परन्तु उनमें जो मनोव्यवहार का आठ सत्ता है उनका बोध मात्र योगी आत्मा को हो सकता है। सामान्य जन कपाल शास्त्र का अध्ययन करते हुए भी इन आठ सत्तावान जो षडष्टक है उन के विज्ञान के अभाव में इस शास्त्र के मर्म ज्ञान को नहीं जान सकते हैं।

षडष्टक

(१) भावाष्टक	(२) प्रकृत्यष्टक		(३) देवाष्टक 'अष्टवसु'
१ धर्म	१ पृथिवी	तन्मात्रा ५ सूक्ष्म भूत	१ अग्नि
२ ज्ञान	२ जल		२ वायु
३ वैराग्य	३ अग्नि		३ अन्तरिक्ष
४ ऐश्वर्य	४ वायु		४ आदित्य
५ अधर्म	५ आकाश		५ द्यौः
६ अज्ञान	६ मन		६ चन्द्रमा
७ अवैराग्य	७ बुद्धि		७ पृथिवी
८ अनैश्वर्य	८ अहंकार		८ नक्षत्र
(४) धात्वष्टक	**(५) गुणाष्टक**		**(६) सिद्धाष्टक**
१ त्वचा	१ क्षमा		१ अणिमा
२ चर्म	२ दया		२ महिमा
३ मांस	३ अनसूया		३ गरिमा
४ रुधिर	४ शौच		४ लघिमा
५ मेदा	५ अनयास		५ प्राप्ती
६ अस्थि	६ मंगल		६ प्राकाम्य
७ मज्जा	७ अकृपणता		७ ईषत्व
८ वीर्य्य	८ अस्पृहा		८ वशित्व

मनुष्य के कपाल शास्त्र का अध्ययन करने से पचास सत्ता का सामान्य ज्ञान होता है परन्तु उन सत्ता का प्रारब्ध योग में जो जाती आयु और भोग प्राप्त हो गया है उनको न्यूनाधिक करने का प्रयत्न करना हो तो योगाचरण से इन षडाष्टक का विज्ञान प्राप्त करके योग्य बनकर क्रियायोग करने से एक जन्म में सुधरा हुआ संस्कार दूसरे जन्म में ऊंची स्थिति में लेजाने का साधन होता है। पूर्व कहे आठ चक्र का व्यवहार मन द्वारा होता है इसलिये मन ही अष्टदल है, इस चक्र की

अवस्था कुल विश्व की बीजरूप जो मानुष शरीर है उसका सब प्रकार का व्यवहार करने के लिये शरीर के अन्य सात चक्रों के ऊपरी अर्थात् मूर्द्धा स्थान में की गयी है। परन्तु मनदेवता का वास तो हृदय में ही है वहां से कुल प्रज्ञाव्यवहार का शासन होता है (Administrative) शासन दक्ष सब कार्य यहां से होते हैं। मूर्द्धा में कार्यनिर्वाहक मात्र (Executive) कचेहरी की स्थापना है। वहां से कार्यनिर्वाक जो अन्य सप्तमण्डल है उनके साथ तार जोड़ दी है। इस व्यवस्था से ही कुल शरीर में धारण, ताड़न प्राणन व्यवहार चलाया जाता है। तार आफिस कैसा कार्य कर रहा है सो वेद भगवान बतलाते हैं:—

तडित्तार विद्योपदशः

युवं पेदवे पुरुवार मश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः।
शर्य्यैर भिद्युँ पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् ॥
ऋ० १-८-२१-१० हे + अश्विना + युवं + पेदवे × स्पृधां + पृतनासु + चर्कृत्यं + श्वेतं + पुरुवारं + दुष्टरं + चर्षणिसहं + शर्य्यैर भिद्युम् + इन्द्रम्ऽइव + तरुतारं + दुवस्यथः ॥

"हे सर्वविद्या वा दीप्ति व्यापक विद्वानों वा देवताओ + आप उभय गुणवान होने से उभय गुण प्राप्त करने वा गतिओं में + शत्रुओं वा अनिष्टता को ईर्ष्या से बुलानेवाली + सेनाओ वा समान धर्मवान द्रव्यों में + निरन्तर कर्म करने योग्य + जो अतीघ गमन कर्म करने में वृद्धत्व प्राप्त करना + और जिससे बहुत ही ग्रहण करने लायक योग्य कार्य होते हैं + जो शत्रु और तथा अनिष्ठस्थिति वा दुःखों का उल्लंघन करने में शक्तिमान् है + जिससे मनुष्यों शत्रुओं और अनिष्ठता को सहन कर सकते हैं + जो धारण, ताड़न, और गमन कार्य करने के लिये यथायोग्य पेचों से बांधा हुवा होता है वा + जिसके कुल

व्यवहार में विद्युत् अग्नि की चमक होती है + वह मन व तड़ित्-तार यंत्र सूर्य जिस रीति से दूर होते हुए किरणों के द्वारा कुल जगत् व्यवहार में वर्तमान् होता है + ठीक वैसाही कुल शरीर में मन रश्मि द्वारा हृदयस्थ आत्मा के सदेशा के अनुकूल वर्तमान होकर व्यवहार चलाता है। उस आधिदैविक मन संज्ञक तार यंत्र या उसके जैसा बनाया हुवा आधिभौतिक तार यंत्र का आप सेवन करो।

भावार्थ—मन और उसका दैविक और भौतिक व्यवहार जानकर जो मनुष्य अध्यात्मसिद्धि प्राप्त करके जगत् को सुखमय करते हैं वे स्वयं आनन्दानन्द में निमग्न हो जाते हैं। जो लोग योगियों का (योग्य पुरुषों का) संग करके निष्काम कर्म रूप योग करते हैं वे ही समस्त विद्या को प्राप्त करते हुये व्यवहार और परमार्थ सिद्धि को सिद्ध करते हैं।

विचारशक्ति, मनःशक्ति, संकल्पशक्ति या दृढ़ विश्वास, संसार में विचित्र और आश्चर्यजनक विज्ञान है। इसी मनःशक्ति दृढ़-विश्वास के बल से, कई महात्माओं ने साक्षात् ईश्वर के दर्शन किये हैं। कई वीरों ने विजय प्राप्त की है। यही शक्ति मंत्र है, जादू है।

आरोग्यता के विचारों को मन में धारण कर आप सो जाइये। वे विचार स्वयं ही आरोग्यता सामग्री जहां तहां से खींच लायेंगे और आप निरोग होने लगेंगे। जब आप को यह मालूम हो जाय कि—हम इच्छित समय पर निद्रा को बुला सकते हैं, और आरोग्य के विचार उत्पन्न कर सकते हैं, तो फिर आपको किसी रोग की निवृत्ति के लिये बाहर की औषधियों की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी।

मनःशक्तिका विलक्षण प्रभाव

शरीर और मन अन्योन्याश्रित हैं। शरीर को कष्ट मिलने

से उसका प्रभाव मनपर अवश्य पड़ता है और मन के अस्वस्थ होनेपर भी रुग्ण हुए विना नहीं रह सकता। तथापि शरीर की अपेक्षा मन विशेषता रखता है। मन शरीर से इच्छानुसार कार्य करा लेता है। विचार की दृढ़ता—अर्थात् विश्वास का प्रभाव शरीरपर बड़ा चमत्कारी होता है।

(योग का चौथा अङ्ग)

प्राणायाम रहस्य

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्राणायामस्यसद्विधिम्।
यस्य साधन मात्रेण देवतुल्यो भवेन्नरः॥ (घे० सं०)

अब जो यम—नियम—आसन आदिसे शुद्ध होकर प्राणायाम करना चाहता हो उसके लिए प्राणायाम का प्रकार कहता हूँ, जिसके साधन से मनुष्य को सिद्धि प्राप्त होकर देवता जैसा पूज्य हो जाता है।

प्राणायाम क्या है?

योगाचार्य्य महर्षि पतञ्जलि भगवान् जी अपने योग शास्त्र में कहा है कि "तस्मिन्सति श्वास प्रश्वास योर्गति विच्छेदः प्राणायामः" यो० पा० २ सू० ४९ अर्थात् आसन स्थिर होनेके पश्चात् श्वास (जो वायु बाहर से भीतर को आता है) और प्रश्वास (जो भीतर से बाहर को जाता है) दोनों की गतिके अवरोध (रोक) को प्राणायाम कहते हैं।

"प्राणः स्वदेहजोवायुरायामस्तन्निरोधनम्।"

अर्थात् अपने शरीर से उत्पन्न होने वाला जो वायु उस को प्राण कहते हैं, उसका जो आयाम अर्थात् जो निरोध (रोकना) उसी को प्राणायाम संज्ञा है।

प्राणायाम का उद्देश्य

प्राणायाम का उद्देश्य मुख्यतः यह है कि अपनी कुण्डलिनी

शक्ति की जागृति करना है। पृष्ठ भाग में मेरुदण्ड है उसके मध्य भाग में से जो मज्जा प्रवाह जाता है उसको सुषुम्ना नाड़ी कहते हैं, इसी की दाईं बाईं ओर इडा और पिंगला के प्रवाह हैं। सुषुम्ना पृष्ठ भाग मेरुदण्ड से आकर गुदा के पास तक पहुँचती है वहाँ मूलाधार चतुर्दल चक्र (Hypogastic plexus) है, यही कुण्डलनी शक्ति सुप्त अवस्था में रहती है। प्राणायाम के आघात से और उसकी उष्णता से यह शक्ति जागृत होती है और आत्मा के साथ संलग्न होती है। इतना होनेके लिए प्राणायाम का उत्तम साधन होना चाहिये।

प्राणायाम प्रकार

प्राणायाम स्त्रिधा प्रोक्तो पूर कुंभक रेचकैः।
सहितः कुंभक श्चेति कुंभको द्विविधो मतः॥

प्राणायाम तीन प्रकार का कहा है। रेचक, पूरक और कुम्भक। कुंभक भी सहित-कुंभक १, रहित-कुंभक २, ऐसे दो प्रकार का है। सहित—कुंभक अर्थात् रेचक-पूरक-सहित कुंभक और रहित कुंभक अर्थात् जिसमें रेचक भी नहीं, तथा पूरक भी नहीं ऐसा कुम्भक; इसको कुंभक भी कहते हैं।

नरेचको नैवच पूरकोऽत्र नासापुटे संस्थितमेव वायुम्।
सुनिश्चलं धारयते क्रमेण कुंभाख्य मेतत्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥

(अर्थ)—जिस में रेचक भी नहीं और पुरक भी नहीं केवल नाक में जो निश्चल वायु उसको क्रमश से धारण करके क्रमश से बाहर छोड़ना जैसे सहनाई बजाने वाले करते हैं, इसको योगी केवल-कुम्भक प्राणायाम कहते हैं।

पूरक-कुंभक-रेचक लक्षण

॥वहिर्यद्रेचनं वायो रुदराद्रेचकः स्मृतः।

अर्थात् पेटके वायु को नाक से बाहर छोड़ना, इसको रेचक कहते हैं।

बाह्यादापूरणं वायो रुदरे पूरकोहि सः।

अर्थात—बाहर का वायु नाकसे पेट में भरना इसको पूरक कहते हैं।

संपूर्ण कुम्भवद्वायो धारणं कुम्भको भवेत्।

अर्थात्—घड़े में जैसे पानी भरते हैं वैसे पूरक से वायु पेट में भरके उसको वैसेही धारण करना, इसको कुंभक कहते हैं।

प्राणायाम के फल

प्राणायाम योगेन सर्वरोग क्षयो भवेत्।
अयुक्ता भ्यास योगेन सर्वरोग समुद्भवः॥

(अर्थ)—जो नियमित रीतिसे प्राणायाम करे तो सब रोग अपने आप नष्ट होजाते हैं और नियमित रीति छोड़के मन मानी रीति से प्राणायाम करे तो शरीर में अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

स्थिर चित्त का उपाय प्राणायाम है

चले वाते चलं चित्तं निश्चलं निश्चलं भवेत्।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्॥

भावार्थः—जबतक प्राणवायु चंचल है तब तक चित्त भी चंचल रहता है और प्राणायाम करके प्राणवायु स्थिर हुआ कि योगी भी स्थिर चित्त होजाता है और उसका आयुष्य बढ़ता है, इसलिये प्रत्येक मनुष्यको प्राणायाम करना चाहिये ऐसा योगशास्त्र में कहा है।

स्थान और आसन प्रकार

शुचौदेशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासन मात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नाति नीचं चैलाजिन कुशोत्तरम्॥

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वायतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासनेयुंज्याद्योगमात्म विशुद्धये ॥ (भ० गी० अ० ६

भावार्थः—शुद्ध पवित्र स्थान में अपना स्थिर आसन बिछाना चाहिये । वह न बहुत ऊंचा और न बहुत नीचा होना चाहिये । उसपर पहिले कुशा (डाभ) अथवा ऊनी आसन बिछाकर उसपर कृष्ण मृग चर्म उसपर एक कपड़े की घड़ी डाल के उस आसन पर बैठके चित्त और इन्द्रिय इनके तरङ्गों को समेट के मन एकाग्र करके नासाग्र में दृष्टि रखके १२ पल तक स्वस्थ बैठना चाहिये । और शरीर को समतोल तान के सिर को सीधा रखना चाहिये । इधर उधर ध्यान न देके मन के सब विषय बुद्धि केवल से बाहर निकाल फिर अन्तःकरण की शुद्धि के लिए प्राणायाम आरम्भ करना चाहिये ।

नाड़ी शोधनार्थ पूरक कुम्भक और रेचक करने की विधि ।

प्रथम इड़ा नाड़ी (दाहिने नासारन्ध्र) से पूरक करना चाहिये, पीछे कुंभक करके फिर पिंगला नाड़ी (बाएं नासा विवर) से रेचक करै, फिर पिंगला से पूरक करके इड़ासे रेचक करै । इसी प्रकार आगे भी क्रम रखना चाहिये ।

दोनों नासापुटों को दबाना

पूरकान्त कुम्भकन्तं धार्यंनासापुटद्वयम् ।
कनिष्ठा नामिकांगुष्ठैस्तर्जनीमध्य मांविना ॥ घे० सं०)

भावार्थ—पूरक अन्त से कुम्भक के अन्ततक, दाहिना नासापुट दाहिने हाथ के अँगुठे से, और बांया नासापुट दाहिने हाथ की अनामिका और कनिष्ठा से बन्द करना चाहिये, किन्तु मध्यमा और तर्जनी इनका कहीं स्पर्श न होने देना चाहिये ।

हाथ की अंगुलियों के क्रम से नामः—अँगुष्ठ (अँगूठा) १, तर्जनी २, मध्यमा ३, अनामिका ४ और कनिष्ठिका।

प्राणायाम की मात्रा

चाषस्तु वदते मात्रां द्विमात्रं चैव वायसः।
शिखी रौति त्रिमात्रं तु नकुलस्त्वर्ध मात्रकम् ॥ (शिक्षा०)

भावार्थः—नकुल (नौला) इसका शब्द अर्धमात्रा प्रमाण का, चाष पक्षी (नीलकंठ) का शब्द एक मात्रा प्रमाण का, कौवा का शब्द २ मात्रा प्रमाण का और मोरका शब्द ३ मात्रा प्रमाण का होता है। यह मात्रा के कालका प्रमाण है।

(घेरंड सं० याज्ञवल्क्य सं०, और योग कल्पद्रुम इन ग्रन्थोंका प्रकार)

प्रथम ८।३२।१६ अर्थात् ८ मात्रा से पूरक, ३२ मात्रा से कुम्भक और १६ मात्रा से रेचक करना चाहिये। इसके सध जाने पर फिर १०।४०।२० अर्थात् १० मात्रा से पूरक, ४० मात्रा से कुम्भक और २० मात्रा से रेचक करना चाहिये। इसके भी सध जाने पर पीछे १६।६४।३२ अर्थात् १६ मात्रा से पूरक, ६४ मात्रा से कुम्भक और ३२ मात्रा से रेचक करना योग्य है। ऐसे ही क्रम बढ़ाते जाना चाहिये।

॥ गोरक्ष पद्धति के अनुसार प्रणव 'ओ३म्' सहित प्राणायाम ॥

प्रथम १२।१६।१० अर्थात् १२ प्रणवों से पूरक, १६ प्रणवों से कुम्भक और १० प्रणवों से रेचक करना चाहिये। यह मध्यम प्राणायाम है। फिर ३६।४८।३० अर्थात् ३६ प्रणवों से पूरक, ४८ प्रणवों से कुम्भक और ३० प्रणवों से रेचक करना चाहिये। यह उत्तम प्राणायाम है।

व्याहृति सहित प्राणायाम

ओ३म् भूः। ओ३म् भुवः। ओ३म् स्वः। ओ३म् महः। ओ३म् जनः। ओ३म् तपः। ओ३म् सत्यम्। इन सप्त व्याहृतियों को दो बार मानसिक जाप करके पूरक, चार बार करके

कुम्भक और १ बार करके रेचक करना चाहिये। यह भी उत्तम प्राणायाम है। कमसे कम नित्य दोनों समय में ८० प्राणायाम यथा विधि ३ मास तक करने से नाड़ी जाल शुद्ध होते हैं।

हठयोग में कुंभक प्राणायाम की विशेषता

राजयोग में चार प्राणायाम (जैसा कि 'आत्म योग' पृ०३ में वर्णन किया है) होता है और हठयोग में कुम्भक प्राणायाम के आठ प्रकार निम्न लिखित ये हैं:—

१ सूर्य्य भेदन, २ उज्जायी, ३ शीतकारी, ४ शीतली, ५ भस्त्रिका, ६ भ्रामरी, ७ मूर्छा और ८ प्लाविनी।

सूर्य्य भेदन विधि

दाहिने नासापुट (इडा) से पूरक करके यथाशक्ति कुम्भक और बांये नासापुट (पिंगला) से रेचक करना चाहिये, यह क्रम नित्य रखना योग्य है इसको सूर्य्य भेदन कहते हैं। इससे जरा (बुढ़ापा) और अपमृत्यु भी टल जाते हैं, कुंडलिनी जागृत होती है, जठराग्नि की वृद्धि होती है और शरीर में सूर्य्य वत् तेज उत्पन्न होता है।

उज्जायी विधि

मुख बन्द करके एकदम दोनों नासापुटों से धीरे २ पूरक करके यथावकाश कुम्भक करना और फिर इड़ा से धीरे २ रेचक करना, इसको उज्जायी कहते हैं। इससे कफदोष, क्रूर वायु, अजीर्ण, आमवात, क्षय, कास, ज्वर और प्लीहा इत्यादि रोगों का निवारण होता है और शरीर में उष्णता उत्पन्न होती है।

शीत्कारी विधि

ऊपर और नीचे के दोनों दांतों के बीच में जीभ रखके

बाहर का वायु जोर से मुख में खींचना। वह ठंडा होता है। फिर कुम्भक करके इडा पिंगला दोनों ही से रेचक करना इसको शीत्कारी कहते हैं। इससे अतुल रूप प्राप्त होता और शरीर में ठंडक होती है।

शीतली विधि

दोनों होठों के बाहर पखेरुओं की चोंच के जैसी जीभ निकाल के धीरे २ पूरक करके कुम्भक करना और इड़ा पिंगला दोनों से रेचक करना, इसको शीतली विधि कहते हैं। इससे गुल्म, प्लीहा, ज्वर व पित्त इत्यादि का नाश होता है और भूख प्यास की शान्ति होती है।

भस्त्रिकाविधि

पद्मासन करके इडा से पूरक और कुम्भक रहित पिंगला से एकदम रेचक करना, इसको भस्त्रिका कहते हैं। इससे बात, पित्त कफ इनका नाश होके जठराग्नि प्रदीप्त होता है।

भ्रामरी विधि

आसन बद्ध हो मुँह बन्द करके इडा पिंगला दोनों से भँवरे के जैसा धीरे २ नाद करते हुए पूरक करना, फिर कुँभक करके पीछे भी धीरे २ भँवरे के जैसा नाद करते हुए रेचक करना, इसको भ्रामरी कहते हैं। इससे मन को अत्यन्त आनन्द होता है।

मूर्छा

आसन बद्ध होके भर पूर पूरक करना फिर जालन्धर बन्ध करके पीछे धीरे २ रेचक करना चाहिये। इससे मनमें मूर्छा उत्पन्न होके उत्तम सुख होता है।

प्लाविनी

मत्स्यासन करके पूरक से पेट में भर पूर वायु भरना और

कुँभक करना चाहिये। ऐसा करने से योगी कमल के पत्ते के समान पानी पर तैरता है। यह अभ्यास का फल है।

द्रष्टव्यः-प्राणायाम प्रकरण में कुँभक आदि की सिद्धि होने के लिए कहे हुए क्रमसे मन लगा के अभ्यास करना चाहिये। एक २ प्रकार का कुम्भक करके उसके सिद्ध हो जाने पर दूसरा करना चाहिये। एक दम सब प्रकार के प्राणायाम सिद्ध होने का प्रयत्न करने से एक भी सिद्ध नहीं होगा, यह बात साधक को पक्की ध्यान में रखनी चाहिये।

प्राणायाम सिद्धि लक्षण

जो प्राणायाम करते २ पसीना आ जाय तो कनिष्ठ प्राणायाम की सिद्धि हुई ऐसा समझना चाहिये।

जो प्राणायाम करते २ इन्द्रियाँ कांपने लग जाँय तो मध्यम प्राणायाम की सिद्धि हुई ऐसा समझना।

"क्रिया शुद्धि ही योग की सिद्धि है।"

* ओ३म् *

(४)

ब्रह्मज्योति प्राप्ति प्राणायाम विधि।

जो संयमसे रहके धौती १ नेति २ नौलि ३ वस्ती ४ त्राटक ५ भस्त्रा ६ षट् कर्म में परिश्रम न करे तौभी निम्न प्रकार 'प्राणायाम' जो वैदिक सिद्धान्तानुसार निश्चित तथा अनुभव सिद्ध है अभ्यास करनेसे ब्रह्मज्योतिका प्रकाश होता

है। आरम्भ में सबसे प्रथम नाड़ी शोधक प्राणायाम करना चाहिए।

नाड़ी शोधक प्राणायाम

प्राणांश्चेदिडया पिबेत परिमितं भूयोन्यथारेचयेत् ।
पीत्वा पिङ्गलया समीरण मथो बद्ध्वात्यजेद्वामया ॥
सूर्या चन्द्रमसोरनेन विधिना बिम्बद्वयं ध्यायतां ।
शुद्धा नाडिगणा भवन्ति यमिनां मासत्रया दूर्ध्वतः ॥

यदि प्राण वायुको वामनासुपुटसे १२ प्रणव ओ३म् मानसिक जपचे पूवक १६ जपसे चन्द्र मंडल ध्यानसहित कुंभक और १० जपसे रेचन सूर्य नाडीसे करना यह एक प्राणायाम हुआ पुनः दक्षिण नाडीसे १२ जप पूरक १६ से सूर्य मंडल ध्यान सहित कुंभक और १० से रेचन करना दूसरा प्राणायाम हुआ पुनः वामसे पूरक दक्षिणसे रेचक करके तीसरा प्राणायाम हुआ; इसी प्रकार चन्द्रांग पूरकके कुंभकमें चन्द्रबिम्ब प्राण वायु स्वरूपका और सूर्यांग पूरकके कुंभकमें सूर्य्य विम्ब अपना वायुस्वरूप का ध्यान करनेवाले योगी के समस्त नाडी जाल तीन महीने उपरान्त शुद्ध (निर्मल) होते हैं। यह नाडी शोधन का उत्तम प्रकार है।

परम ज्योति

अकारश्च उकारश्च मकारो विन्दु संज्ञकः ।
त्रिधा मात्रा स्थिता यत्र तत्परं ज्योति रोमिति ॥

त्रिलोकात्मा अकार, उकार और विन्दुस्वरूप मकार तीन्हूं मात्रा रहित हैं, जिसमें ऐसा ब्रह्मज्योतिस्वरूप प्रणव "ओ३म" है।

हंस

षट् विंशदङ्गु लो हंसः प्रयाणं कुरुते बहिः ।
वामे दक्षिण मार्गेण ततः प्राणोऽभिधीयते ॥

प्राण वायु अपान वायु रूप हंस इडा पिंगला के मार्ग से ३६ अंगुल बाहर निकलता है इस हेतु "वहिः प्रयाणं कुरुते प्राणः" उक्त वायु प्राण कहाता है। प्राणापान वायु रूप हंस है और नहीं।

शुद्धिमेति यदासर्वं नाडी चक्रं मलाकुलम्।
तदैव जायते योगी प्राण संग्रहणे क्षमः॥

जब शरीर के मल से व्याप्त नाडी जाल, नाडी शोधन प्राणायाम के प्रभाव से शोध के शुद्ध निर्मल होता है तब योगाभ्यासोपयोगी प्राणवायु को थामने की सामर्थ्य योगी को होती है, अन्यथा नहीं।

प्राणायाम भेद

योग साधन माला के तृतीय पुष्प 'आत्मयोग' पृष्ठ ६२ में प्राणायाम का भेद चार प्रकार का बतलाया गया है। यथा:—

(१) "वाह्य" वा रेचक—जिसमें वमन के समान वायु दोनों नासिका पुट से निकाली जाती है।

(२) "आभ्यन्तर" वा पूरक—वायु को धीरे २ भीतर भरना।

(३) "स्तम्भवृत्ति" वा कुम्भक—वायु को भीतर रोकना।

(४) "वाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी" वा देवासुर संग्राम अर्थात् वाह्य और भीतर के वायु की टक्कर, बाहर निकलते हुए वायु को वहीं रोक देना और भीतर जानेवाले को बाहिर रोक देना।

चतुर्विध प्राणायाम की सामान्य विधि

(१) "वाह्य विषय" नामक "प्रथम प्राणायाम" की विधि यह है कि जब भीतर से बाहर को श्वास निकले, तब उसको वाहर ही रोक देवे।

(२) "आभ्यन्तर विषय" नामक "द्वितीय प्राणायाम" की विधि यह है कि जब बाहर से श्वास भीतर को आवे, तब उसको जितना रोक सके उतना भीतर ही रोक देवे।

(३) "स्तम्भवृत्ति" नामक "तृतीय प्राणायाम" करने में न प्राण को बाहर निकाले और न बाहर से भीतर लेजाय, किन्तु जितनी देर सुख से हो सके, उसको जहां का तहां ज्यों का त्यों रोक देवे।

(४) "बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी" नामक "चतुर्थ प्राणायाम" की विधि यह है कि जब श्वास भीतर से बाहर को आवे तब बाहर ही कुछ २ रोकता रहे और जब बाहर से भीतर जावे तब उसको भीतर ही थोड़ा २ रोकता रहे। और जब बाहर से भीतर जावे तब उसको भीतर ही थोड़ा २ रोकता रहे।

प्राणायाम की यथाक्रम विस्तृत विधि

अब चतुर्विध प्राणायाम को विस्तृत विधि जो एक के अभ्यास होनेपर यथाक्रम दूसरा, तीसरा और प्राणायाम करना चाहिए, उन चारो प्राणायाम की विधि अब लिखता हूं:-

प्रथम प्राणायाम विधि

(१) प्रथम आसन दृढ़ करे। आसनों में सिद्धासन सर्वोत्तम है।

(२) जिह्वा को उलटकर तालू में लगादेवे।

(३) किसी एक देश में ध्यान को ठहरावे।

(४) उसी देश में ध्यानद्वारा प्राणवायु को लेजाकर ठहरा दे, परन्तु जिस देश में धारणा करे वहां उस देश सम्बन्धी वायु से ही काम लेना चाहिये।

(५) मूल नाड़ी (चतुर्दल चक्र) गुदा स्थान को ऊपर की ओर आकर्षित करे।

(६) उसी देश में चित्त की वृत्तियों और सब ज्ञानेन्द्रियों की शक्तियों को ध्यान योगद्वारा ठहराकर परमेश्वर (सत्-चित् आनन्द) की उपासना उसके गुण, कर्म और स्वभाव के अतिरिक्त अन्य किसी विषय में न जाने दे।

(७) प्रणव (ओ३म्) का मानसिक (उपांशु) जाप शीघ्र २ एक रस करे।

(८) प्रणव के जप में संख्या करके काल का अनुमान करे और अभ्यासद्वारा काल की वृद्धि उत्तरोत्तर प्रतिदिन करे।

(९) प्राणवायु को बाहर निकालने के अर्थ हृदय देश से उठाकर, प्रथम मूर्द्धा (ब्रह्मांड) में, फिर त्रिकुटी (भ्रूमध्य) में, फिर नासाग्र में स्थापित कर २ के एक २ धारणा का अभ्यास करे।

(१०) फिर प्राणवायु को भीतर लेजाते समय उसही क्रम से अर्थात् नासाग्रसे भृकुटी में, भृकुटी से ब्रह्मांड में और ब्रह्मांड से हृदय में एक २ स्थान में थोड़ी देर ठहरा २ कर हृदय में स्थापित कर दो।

(११) और अपने आत्मा को परमात्मा में लगा दो।

द्वितीय प्राणायाम विधि

अब "आभ्यन्तर विषयक प्राणायाम" की विशेष विधि कहते हैं। नाभिके नीचे ध्यान लगाकर अपान वायु उदरमें भरे, जब नाभिसे लेकर कंठतक भरजाय तब जलदीसे ध्यानको कंठमें लाकर अपानवायु बन्द करदे। जब जी घबराने लगे तब धीरे २ ध्यानके साथ छोड़दे। पुनः इसी प्रकार अपानवायु भरे और जितनी देर सहन करसके, उतनीदेर बन्दकर रक्खे। जब जीका घबराना न सहाजाय तब ध्यान द्वारा धीरे २ छोड़दे। इस विधिसे वारंवार अपानवायु भरे और थोड़ी देर रोककर छोड़दे। और प्रथम प्राणायाममें कही विधिसे ओ३म् मंत्रका

जप करे और उसकी संख्या द्वारा अपानवायुको उत्तरोत्तर अधिकदेर बन्द कर रखनेका अभ्यास प्रतिदिन बढ़ाता जाय।

तृतीय प्राणायाम विधि

अब "स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम" नामक तृतीय प्राणायाम की बिधि कहते हैं। प्राणवायुके ठहरनेका स्थानजो हृदय देश है और अपानवायुके ठहरने का स्थान जो नाभि देश है, इन दोनों स्थानोंके मध्यवृत्ति अवकाशमें स्थित समानवायुके आधारमें स्तम्भवृत्तिसे ध्यानको लगादे अर्थात् ध्यानसे समान वायुको पकड़कर थांभले। जब मन घबराने लगे, तब ध्यानही से उसको छोड़दे। पुनः बारंबार इसही प्रकार करे, अर्थात् सुख पूर्वक जीतनो देर होसके उतनी २ देर बारंबार अभ्यास करे, ध्यान द्वारा स्तम्भ वृत्तिसे प्राण और अपान दोनों जहांके तहां रुक जाया करते हैं। योगकी सम्पूर्ण क्रिया सर्वत्र ध्यान सेही की जाती है, इस बातका उपासकको सर्वदा स्मरणरहे। "स्तम्भन, खड़ा वा बन्द करना, तथा पकड़ और थांभ लेना" ये पर्यायवाची शब्द स्तम्भ वृत्तिके अर्थ हैं।

चतुर्थं प्राणायाम विधि

(देवासुर संग्राम)

अब "बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी प्राणायाम" वा देवासुर संग्राम चतुर्थ प्राणायामकी विधि कहते हैं। "ऊपरसे लाओ प्राण और नीचेसे लाओ अपान और दोनोंका युद्ध नासिकामें कराओ"। अर्थात् हृदय देशमें ठहराने और भीतरसे बाहर जानेका स्वभाव वाले प्राणवायुको ऊपरकी ओर चढ़ाकर ब्रह्मांडमें होकर भ्रूमध्यमें लाकर, त्रिकुटी ले स्थापित करो और नाभिके नीचे ठहरने और बाहरसे भीतर आनेके स्वभाव वाले अपानवायुको बाहरसे लेकर नासिकाके छिद्रोंके भीत

लेकर स्थापित करो। अब दोनोंको धक्का देकर एक दूसरेके विरुद्ध क्रिया करके लड़ाई कराओ। अर्थात् न तो प्राणको बाहर निकलनेदो और न अपानको भीतर जानेदो। इस प्रकार विरुद्ध क्रिया करनेसे दोनों प्राण वशमें होजाते हैं। इस प्राणायामको करनेके समय मन इन्द्रियादिकोंको त्रिकुटीमें ध्यान द्वारा स्थिर करो। इस चौथे प्राणायामकी क्रियाकोही प्राणोंमें प्राणोंको लयकरना वा प्राणोंमें प्राणोंका हवन करना कहते हैं। द्र०—प्राण और अपान इन दो प्राणोंकी ही गति के रोकने का प्रयत्न चारों प्राणायाममें है। इस प्रकार क्रमशः एक २ प्राणायामके अभ्यास पूर्ण होनेपर फिर चारो प्राणायाम एक साथ करनेका अभ्यास करे।

चारों प्राणायामकी विधि

(१) सिद्धासनसे अपने आसनको दृढ़ करे।

(२) दोनों हांथोंको दोनो पैरके गुठनों पर फैला कर अंगुलियों को सीधी करके तर्जनी को अंगुष्ठ पर रख सारे शरीरको धनुषाकार बना देवे। जिह्वाको उलटकर तालु स्थान में चिपका देवे और फिर अपनी डाढ़ी (ठुड्डी) को कंठ कूप (हंसली) पर दबाके नाभि देखता हुआ गुदा स्थानके मूल नाड़ी (चतुर्दलचक्र) को ऊपरकी ओर आकर्षित कर भीतर के वायुको वमन की भांति शीघ्रतासे फेंक देने पश्चात् नाभि स्थल (दशदल चक्र) को त्राटककी भांति दृढ़ चित्तसे प्रणव 'ओ३म्' का क्रमशः और मानसिक (उपांशु) जाप शीघ्र २ एक रस करे उसके उपरान्त दृष्टिको हृदय स्थल (द्वादश दलचक्र) में त्राटक करके वाह्यवायुको शनै २ (धीरे २) उदरमें भरकर क्रमशः ८, १६, ३२ वार उपांशु (मानसिक) जाप करे, पश्चात् दृष्टिको भ्रूमध्य (त्रिकुटी) द्विदलचक्रमें त्राटक करके उसी अपानवायुको वहीं स्थापित कर क्रमशः १६, ३२, ६४ वार

उपांशु (मानसिक) जाप होजानेपर उसे फेंक देवे। इसी-प्रकार उसी आसन पर कुछ आराम लेकर स्वस्थ चित्तसे कम से कम ३ वार करे। ऐसा करने से चारो प्राणायाम एक साथ हो जाते हैं। योगाभ्यासीको दिवा रात्रिमें प्रतिदिन चार वार प्राणायाम द्वारा उपासना करनेकी वेद भगवान्‌की आज्ञा है "नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमादिवा । भवायच शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः" ॥ अथर्व: ११।२।१६। अर्थात् (१) प्रातः (प्रातः काल के समय) (२) सायं (सायंकाल के समय), (३) दिवा (दिनके समयमें), तथा (४) रात्र्य (रात्रिके समय), इस प्रकार प्रतिदिन चार वार सर्वजगच्चि-यन्ता परमेश्वरको नमन करना चाहिए। साधारण लोगों को प्रतिदिन तीन अथवा दो वार करना चाहिए।

(आ) योगाभ्यास करनेका स्थान वेदमें लिखा है "उप-ह्वरे गिरीणां संगमेच नदीनाम् धिया विप्रो अजायत" यजु २६।१५ अर्थात् पहाड़ोंकी भूमिपर और नदियोंके संगमपर बैठकर ज्ञानी लोक (धिया) धारणायुक्त बुद्धिसे (अजायत) उन्नतिको प्राप्त करते हैं। सुंदर उद्यान, मनोहर तालाब, प्रशस्त और रमणीय वाटिका आदि स्थानोंमें भी पूर्वोक्त प्रकार सुगमता से मन उपासना में लीनहो सकता है।

१ आसन का प्रयोजन

पूर्व लिख आये हैं कि जिसमें सुख पूर्वक शरीर और आत्मा स्थिर हो, उसको आसन कहते हैं। आसन के सुस्थिर होने से जब शीतोष्ण अधिक बाधा नहीं करते, अंगों का कम्पन नहीं होता, तभी चित्त की वृत्तियों का निरोध, मन इन्द्रिय और आत्मा की स्थिति परमेश्वर में होकर समाधियोग प्राप्त होता है। आसन गुद गुदा होने से नूतन योगी अधिक देर तक बैठने का अभ्यास कर सकता है, अतएव शरत् काल में ऊपर

से ऊर्णासन वा कम्बल तथा अन्य ऋतुओं में कुछ वस्त्र बिछा कर सुख से बैठे।

२ जिह्वा का तालु में लगाने का प्रयोजन

जिह्वा को तालु में लगाने के दो प्रयोजन हैं। पहला—सात छिद्रों में होकर बाहर निकलने के स्वभाव वाले हृदय देशस्थ प्राणवायु का कंठ देशस्थ मार्ग जिह्वा द्वारा रोक देने से प्राणवायु सीधा ऊपर को ब्रह्मांड में ही सरलता से जाता है और नासिका के अतिरिक्त अन्य इन्द्रिय (छिद्र) द्वारा बाहर नहीं निकलने पाता, क्योंकि इन्द्रियों की शक्तियाँ मन के साथ ही साथ ऊपर को चली जाती हैं। दूसरा यह भी प्रयोजन है कि यदि जिह्वा इस प्रकार टिकाई न जाय तो हिलती रहे वा ऊँ शब्द का उच्चारण ही करने लगे, तो जिह्वा की चेष्टा होती रहने से मन का निरोध, ध्यान, धारणा वा समाधि कुछ भी सिद्ध न हो सके।

३ एक देश में ध्यान ठहराने का प्रयोजन

चित्त की एकाग्रता करना है और इसकी विधि मुण्डक उपनिषद् में अलङ्कार रूप से इस प्रकार कहा है:—

प्रणवोधनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्य मुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यम् शरवत्तन्मयो भवेत्॥ द्वि०मुं०खं०२मं०४

अर्थ—प्रणव नाम परमेश्वर वाचक ओ३म् शब्द ही उस परमात्मा रूपी लक्ष्य के बाँधने के लिये मानो धनुष है। जीवात्मा ही मानो बाण है और वही ब्रह्म (परमात्मा) मानो निशाना है। अप्रमत्त होकर जो उसे बेधता है वह तीर की भाँति ब्रह्म में तन्मय हो जाता है।

४ प्राण आदि वायु के आकर्षण का प्रयोजन तथा ऊपर चढ़ाने और नीचे उतारने की कथा।

ध्यान एक प्रकार की विद्युत् (बिजुली) है जैसे चुम्बक

पत्थर लोहे को खींच लेता है, इस ही प्रकार ध्यान प्राणों को खींच कर ऊपर को चढ़ा और नीचे को उतार ले जाता है। प्राण आदि वायु के आकर्षण करने का प्रयोजन मन की एकाग्रता करना ही है।

* ५ मूल नाड़ी को ऊपर की ओर आकर्षण करने का प्रयोजन *

मूलेन्द्रिय के खिचे रहने से ही प्राण नाक के बाहर अधिक ठहर सकता है। यही प्रयोजन इस क्रिया का समझना चाहिये।

६ चित्त और इन्द्रियादि को ध्यान के स्थान में स्थिर रखने का प्रयोजन

चित्त तथा इन्द्रियादि को ध्यान ठहराने के स्थान में स्थिर रखने का अभिप्राय वा प्रयोजन यही है कि समाधियोग सिद्ध हो जावे।

७ प्रणव का मानसिक (उपांशु) जाप शीघ्र २ एक रस करने का प्रयोजन।

इस विषय में तीन अंग हैं। (क) मानसिक जाप (ख) शीघ्र २ जाप (ग) एक रस जाप।

(क) मानसिक जाप का अभिप्राय वाणी का संयम करना मात्र है। वाणी के संयम से चित्त (मन) एकाग्र होता है।

(ख) चित्त चंचल है, जब उसके चाञ्चल्य से ओ३म् पद के शीघ्र २ जाप में सहयोग लिया जाय तो सम्भव है कि ध्येय पदार्थ के अतिरिक्त अन्य विषय में प्रवृत्त न हो सके। यही शीघ्र जाप का प्रयोजन है कि चित्त जपरूप एक काम में ही लगा रहे।

(ग) मन के स्थिर करने के लिये काल का नियम करना आवश्यक है। जैसे क्षणनिमेषादि कल्पान्त अनेक काल की अवधि वा संज्ञा हैं, इस ही प्रकार एक बार " ओ३म् " कहने में जो समय लगता है, उसको इसी विषय में एक काल की सूक्ष्म से सूक्ष्म अवधि मानकर ॐ मंत्र के उच्चारण की संख्या

प्राणायाम के करते समय की जाती है। सो जितनी गिनती तक ॐ कहते २ मन अन्य किसी संकल्प वा विषय में न जाय, तबतक जानो कि जाप एकरस हुआ।

८आवरणलयता तथा निद्रा वृत्तियों के स्वरूपके जाननेकी आवश्यकता।

मन के एकरस न रहने के दो विघ्नरूप कारण अर्थात् आवरण और लयता वृत्तियां भी हैं। ये दोनों निद्रावृत्ति के पूर्वरूप वा भेद हैं। ध्यान योगद्वारा इनके स्वरूप का ज्ञान और उपासना समय में इनका निवारण उपासक को करना उचित है. क्योंकि विना पहिचाने निद्रादि वृत्तियां जीती नहीं जासकतीं। आसन दृढ़ नहीं होता और निद्रावश मनुष्य थोड़ी देर भी अच्छे प्रकार एकाग्र चित्त से नहीं बैठ सकता और उपासना करते समय निद्रादि आती भी शीघ्र ही हैं और अचानक आकर मनुष्य को अचेत कर देती है, क्योंकि निद्रा के उक्त पूर्व रूपों की गति अति सूक्ष्म है। निद्रा के ज्ञान होने से मनुष्य को अपने सोने तथा जागने का भी ज्ञान हो जाता है, अर्थात् वह जान लेता है कि अब निद्रा आ गई और अब चली गई। जैसे अर्जुन ने निद्रा को जीत लिया था, इस ही प्रकार सब कोई अभ्यास करने से निद्रा को जीत सकते हैं।

चित की पांच वृत्तियों में निद्रा भी एक वृत्ति है। जैसे अन्य वृत्तियों का ज्ञान हो जाता है इस ही प्रकार निद्रावृत्ति का ज्ञान हो जाने में किसी प्रकार का भी सन्देह नहीं करना चाहिये।

९ निद्रा नाम सोते समय में जीवात्मा और मन की स्थिति।

मनुष्य जब सोता है, तब जीवात्मा लिंगदेह में प्रवेश कर जाता है और मन सब इन्द्रियों सहित कूर्मा नाड़ी में प्रवेश कर के शान्त हो जाता है कि जैसे कछुआ अपने सारे अङ्गों को भीतर सकोड़ लेता है और बाहर चंचलता से चलने वाला नाग अपने बिल में जाकर शान्त हो बैठता है।

१० निद्रा के पहिचानने की विधि

जब दिन और रात्रि के काम धन्धों से निश्चिन्त होकर मनुष्य सोने लगे, तब त्रिकुटी (भ्रूमध्य) में ध्यान लगा कर निद्रा के आने का ध्यान रक्खे और उसके स्वरूप के जानने का प्रयत्न करे। सोते समय जहां ध्यान लगाकर मनुष्य सोता है जागते समय उस ही स्थानपर ध्यान लगा हुआ जागता है।

इत्यादि प्रकार से विघ्नकार चित्त की वृत्तियों का ज्ञान प्राप्त करके उनको हटाते रहने से प्रणव का मानसिक एकरस जाप होना संभव है, अन्यथा असम्भव है।

११ प्रणव जाप विधि

प्रणव के जाप में संख्या करके काल का अनुमान करे। प्रणव ॐ के जप करने की विधि यह है कि ध्यानरूपी बिजुली द्वारा मन तथा उसकी सम्पूर्ण वृत्तियां और ज्ञानेन्द्रियों की दिव्य शक्तियां आदि सब को एक देश में ठहराकर संयम करे और उस ही स्थान में मौनव्रत पूर्वक मन ही मन में तदाकार वृत्ति से परमेश्वर में अपने आत्मा को लगाकर ओं का जप करे, तब साङ्गोपाङ्ग जाप पूर्ण किया जाता है। जहां २ धारणा की जाती है, वहां २ सर्वत्र इस ही विधि से जाप किया जाता है, अन्यथा जप खण्डित समझा जाता है।

प्रणव के जप में जितने काल में एक बार ओं कहा जाता है, एक सिकण्ड उतनी ही देर में व्यतीत होता है, इस अनुमान से ६० वार एक रस ओं का मानसिक उच्चारण करने में एक मिनट होता। एक घन्टे में ६० मिनट और ३६०० सिकण्ड होते हैं। अतः एक घन्टे भरके प्रमाण से उपासना करनेवाले मनुष्य को उचित है कि एक आवृत्ति में ६० तक ओं जपे, ऐसी ६० आवृत्तियां करने में पूरा घन्टा हो जाता है, ओं की गणना मन में करनी चाहिये, किन्तु हाथ की अंगुलियों पर नहीं।

प्रथम प्राणायाम की नासिकाग्र वाली तृतीय धारणा के परिपक्व हो जाने पर जब प्राण वायु बाहर निकलने लगता है, तब घबराहट होकर प्राण झट भीतर चला जाता है, उसको नासिका के बाहर अधिक ठहरने का अभ्यास उत्तरोत्तर क्रमशः यहाँ तक वढ़ाना चाहिये कि जितनी देर में ५०० वार ओं कह सके, उतनी देर प्राण बाहर ठहरा रहे। फिर ओं के स्थान में व्याहृतियों मन्त्रों से अभ्यास करे अर्थात् आदि में इतनी देर प्राण बाहर ठहरावे कि जितनी देर में ओं सहित सप्त व्याहृति मन्त्रों को न्यून से न्यून तीन वार पढ़ सके, फिर २१ बार इन मन्त्रों को एक बार में पढ़ सकने तक का अभ्यास बढ़ावे और इसको एक २ प्राणायाम समझे। पश्चात् ऐसे ऐसे तीन प्राणायाम एक वार में कर सकने का अभ्यास करे, अन्त में २१ प्राणायाम कर सकने की योग्यता प्राप्त करले। जितनी देर प्राण बाहर ठहर सके, उसको एक प्राणायाम कहते हैं।

१२ओं का जाप १ मात्रा से वा दो मात्रा से अथवा सम्पूर्ण ३ मात्रा से करना।

प्रणव का जाप करने वाले को यदि उसके अर्थ का विचार वा ज्ञान नहो तो जानो कि वह एक मात्रा से ओ३म् को जपता है। यदि अर्थ विचार सहित जपे तो जानो कि वह दो मात्राओं से ओ३म् का जप करता है और जो उस आनन्द स्वरूप परमात्मा के सन्मुख और उस ही के आधार और आनन्द के प्रकाश में निमग्न होकर जपे तो जानो कि वह ओं का जाप उसकी तीनों मात्राओं से करता है।

* १३ ब्रह्माण्डादि तीन स्थान की धारणाओं का प्रयोजन *

प्रथम प्राणायाम सिद्ध करने के लिये नासिका के बाहर प्राण वायु को लाकर खड़ा करना होता है, जहाँ आरम्भ में एक साथ कदापि नहीं आ सकता। अतः तीन स्थान की धारणा रूप तीन श्रेणी का क्रम रक्खा है। सो प्रथम तो प्राण

को सीधा ब्रह्माण्ड में लाना ही कठिन है, फ़िर भ्रकुटी में फिर नाक के बाहर तो अति कठिनता से निकलता और ठहरता है।

प्राण वायु को भीतर ले जाते समय क्रम से तीन स्थानों में थोड़ी २ देर ठहराये हुये हृदय में लेजाकर स्थापित कर देने का अभिप्राय।

ऐसा करने का प्रयोजन यह है कि प्राण उपासक के वश में होकर इच्छानुकूल जहां चाहे वहाँ ठहरा सकेगा।

* १५ अपने आत्मा को परमात्मा में लगा देनेका प्रयोजन *

अपने आत्मा को परमात्मा मे लगा देने से पापों का नाश होकर मोक्ष प्राप्त होता है।

नासिकाग्र में धारणा करते २ जब प्रथम प्राणायाम सिद्ध होजानेपर प्राणवायु बाहर निकलता अच्छी प्रकार विदित होने लगे, तब प्राण को बाहर अधिक ठहराने के लिये ओं की संख्या बढ़ा २ कर जब अच्छे प्रकार एकरस ५०० बार ओं कहने तक प्राण बाहर ठहरने लगे, तब वक्ष्यमाण सप्त व्याहृति मन्त्रों को उच्चारण करके प्राणायाम करना चाहिये। वे मंत्र नीचे अर्थ सहित लिखे जाते हैं, इन सब से ईश्वर ही के गुणों का कीर्तन और प्रार्थना होती है।

(१) ओंभूः—हे प्राणाधार परमेश्वर! आप मेरी रक्षा कीजिये।

(२) ओं भुवः—हे दुःखविनाशक परमेश्वर! आप मेरी रक्षा कीजिये।

(३) ओं स्वः—हे मोक्षानन्दप्रद परमेश्वर! आप मेरी रक्षा कीजिये।

(४) ओं महः—हे सबके बड़े गुरु परमेश्वर! आप मेरी रक्षा कीजिये।

(५) ओं जनः—हे जगत्पिता परमेश्वर! आप मेरी रक्षा कीजिये।

(६) ओं तपः—हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! आप मेरी रक्षा कीजिये।

६

(७) ओं सत्यम्--हे अविनाशी परमेश्वर ! आप मेरी रक्षा कीजिये।

प्राणायाममें सप्तव्याहृतिका प्रयोजन

'व्याहृति' का अर्थ 'उच्चार, Statement, विधान, सांकेतिक शब्द, विशेष गूढ़ अर्थ का शब्द है, प्राणायाम में सप्तव्याहृतियों का महत्व अत्यन्त है। सात मुख्यकेन्द्रों की सूचना इन शब्दों से हो रही है। (१) अस्तित्व सत्ता, (२) चिंतन कल्पना, विचार, चित्; (३) स्वत्व, आत्मानुभव; (४) महत्व, उदारता; (५) जननशक्ति, (६) कष्ट सहने की शक्ति और (७) सत्यनिष्ठा; ये सात गुण मनुष्यमात्र की उन्नति के लिये आवश्यक हैं। इनके बिना उन्नति साध्य नहीं हो सकती। इन शक्तियों को प्राप्त करना, बढ़ाना और जगत् के उद्धार के लिये इनका अर्पण करना सब को योग और आवश्यक है।

प्राणायाम में तीन क्रिआएं होती हैं। पूरक, कुम्भक, और रेचक। प्राप्ति धारण और अर्पण ये तीन भाव यहां अभिप्रेत हैं। (१) पूरक से वाह्य प्राण को अन्दर लिया जाता है, (२) कुम्भक से उस प्राप्त प्राण की धारणा की जाती है, और (३) रेचक से उस प्राण का फिर जगत् के सर्वव्यापक प्राण में अर्पण किया जाता है। ये तीन प्रकार निम्न क्रियाओं के सूचक हैं। (१) उक्त सप्तगुणों की अपने अन्दर पूर्णता करना (२) उनकी धारणा और वृद्धि करना, और पश्चात् (३) जगत् की उन्नति के लिये उनका अर्पण करना प्राणायाम में उक्त सात व्याहृतियों के होने का यही तात्पर्य है। यह ही एक बड़ा भारी मन्त्र है।

यज्ञः—

सत्कार संगति दान

प्राप्ति	धारणा	त्याग
पूरक	कुंभक	रेचक
गुणसंपादन	गुणसंवर्धन	गुणसमर्पण
ब्रह्मचर्याश्रम	गृहस्थाश्रम	वानप्रस्थ, संन्यास

ॐकार का स्मरण करके सात गुणों का संपादन-संवर्धन-समर्पण करने का अभ्यास प्राणायाम में किया जाता है। ये सब गुण परमात्मा के अन्दर अत्यन्त पूर्णता से हैं। मनुष्य उनको अभ्यास से अपने अन्दर कर सकता है। प्रतिदिन के अभ्यास से मनुष्य अपने अन्दर शुभ गुणों की वृद्धि कर सकता है और अशुभ दुर्गुणों को दूर कर सकता है। निश्चय के साथ प्रयत्न करने से प्रत्येक मनुष्य को यह साध्य हो सकता है। प्रत्येक मनुष्य के आधीन है कि वह अपने मन में विशिष्ट विचार लावे या न लावे। "मनुष्य का आत्मा मन का गुलाम नहीं है परन्तु वह मन का स्वामी है।" यह बात कभी भूलना नहीं चाहिए।

पूर्वोक्त सप्तव्याहृतियों के सूचक सात शुभ गुण पूर्णतया परमात्मा के अन्दर विद्यमान हैं। (१) भूः—सत्ता, प्राण सब जगत् का जीवन; (२) भुवः—अपना दुःख दूर करना, ज्ञान; (३) स्वः—सुख, आनन्द, स्वत्व; (४) महः—महानता, सबसे बड़ा होना; (५) जनः—सब को उत्पन्न करने की शक्ति; (६) तपः—दुष्टों को तपाना, दुष्टों का दमन करना; (७) सत्य—सत्य, त्रिकालाबाधित होना; आदि सात शुभ गुण मुख्यतया तथा पूर्णतया परमात्मा के अन्दर है। ये परमात्मा के गुण उपासना द्वारा मनुष्य अपने अन्दर लाता और धारण करता है। सब शुभ गुण इसी प्रकार मूल स्रोत परमात्मा से जीवात्मा के अन्दर आते हैं।

जिस प्रकार ज्ञान गुरु से प्राप्त करना, मनन से बढ़ाना और पश्चात् उसका परोपकार के लिए विनियोग करना

होता है; व्यायामादि द्वारा बल बढ़ाना और दूसरों की रक्षा के लिये उसका विनियोग करना होता है। उसी प्रकार सब शुभ गुणों की प्रथम प्राप्ति करना, पश्चात् उनकी वृद्धि करना और नन्तर उनका परोपकार के लिए समर्पण करना होता है। ठीक प्रकार, सप्तव्याहृतियों के सात गुण अपने अन्दर बढ़ाकर उसका परोपकार में समर्पण करना है। परमेश्वर के ही गुण परमेश्वर के महान् यज्ञ में लगाने हैं। लगाने में स्वयंसाधन रूप बनना है, इसीलिये अब धर्म के विधि और नियम है। गुण अपने पास आने के पश्चात् स्वार्थ उत्पन्न होता है और जनता की उन्नति में बोध उत्पन्न करने में मनुष्य प्रवृत्त होता है। ऐसी राक्षसी वृत्ति नहीं होना चाहिए। यह ही यहां उपदेश है।

॥ चतुर्विध प्राणायामके अभ्यासार्थ विशेष वक्तव्य ॥

वाह्य विषय नामक प्रथम प्राणायाम में तो देश, काल और संख्या करके परिदृष्ट 'प्राणवायु' बाहर फेंका जाता है और आभ्यान्तविषय नामक दूसरे प्राणायाम में देश, काल और संख्या करके परिदृष्ट 'अपान वायु' भीतर को फेंका जाता है (उभय था दीर्घ सूक्ष्मः) काल और संख्याके परिणामसे दोनों प्राणायाम दीर्घ तथा सूक्ष्म होते हैं (तत्पूर्वकः) येदोनों प्राणायाम क्रम पूर्वक अभ्यास करते २ (भूमि जयात्) जब अच्छे प्रकार परिपक्व हो जाय अर्थात् प्रथम प्राणायाम तो अपनी नासिका भूमिमें परिपक्व होजाय, फिर दूसरे प्राणायाम का अभ्यासभी जब नाभि भूमिमें परिपक्व होजाय, इस क्रमसे जब दोनों प्राणायामकी क्रिया सीखकर पक्का अभ्यास होजावे, तब प्राण और अपान इन दोनोंकी गतिके अभाव (रोकने) से चतुर्थ प्राणायाम किया जाता है।

तीसरे और चौथे प्राणायामोंमें भेद यह है कि प्राणवायुका विषय नासिका और अपान वायुका विषय नाभिचक्र है, इन दोनों विषयोंका लक्ष्य वा विचार किये बिनाही आरम्भ करने

के साथ तीसरे प्राणायाममें एक बार ही दोनों प्राणोंकी गति का अभाव किया जाता है और देश, काल, संख्यासे परिदृष्ट दीर्घ सूक्ष्म यह (तीसरा) प्राणायामभी होता है किन्तु चौथे प्राणायाममें प्रथमतो क्रम पूर्वक प्रथम और द्वितीय प्राणायामों की भूमियोंमें अभ्यास परिपक्व करना होता है, पश्चात् श्वास और प्रश्वास (अपान और प्राण) इन दोनोंके विषयों (नाभि और नासिका नामक भूमियों) का लक्ष्य करके (उभया क्षेप पूर्वकः) प्राणको बाहरकी ओर और अपानको भीतरकी ओर फेंकते हुवे दोनोंकी गतिको रोकना होता है। अतः जो उभया क्षेपी प्राणायाम है उसीको चतुर्थ प्राणायाम कहते हैं। चौथे प्राणायामको उभयाक्षेपी इस विधिसे करनी होती है कि इसमें प्राणको वाहर निकालने और अपानको भीतर लेनेकी दोनों क्रियाएं जो एक दूसरेके विरुद्ध हैं. की जाती है और दोनों प्राणोंमें धक्कमधक्का संग्राम तुल्य होता है। इस चौथे प्राणायाम में यही विशेषता है। द्रष्टव्यः—प्राण और अपान इन दो प्राणों की ही गतिके रोकने का प्रयत्न इन चारों प्राणायाम में जाननी चाहिये। जब प्राणायामकी मात्रा बढ़ते २ बारह दिनतक हो जाती है उस समय समाधि लग जाती है तब योगी बेसुध होकर अपने आपे को भूल जाता है।

देवासुर संग्राम

सत्य शास्त्रोंके अनुकूलजो देबासुर संग्रामकी कथा है। वह निरुक्त तथा शतपथ ब्राह्मणादि ग्रन्थोंमें रूपकालंकारसे याथातथ्यतः वर्णनकी गई है। वहां वास्तविक देव और असुरों का विवेचन करते समय मनुष्यका मन और ज्ञान इन्द्रियाँ देवता माने गये हैं। मनको राजातथा इन्द्रियोंको उसकी सेना मानी हैं और प्राणोंका नाम असुर रक्खा है. उनमें राजा प्राण और अपानादि अन्य प्राण उसकी सेना में गिनाये हैं। इनकाभी परस्पर विरोध रूप युद्ध हुआ करता है। मन का विज्ञान

बल बढ़नेसे प्राणोंका निग्रह (पराजय) और प्राणोंको प्रबलता प्राप्त होनेसे मन आदिका निग्रह (पराजय) होजाता है। यह उक्त कथाका आशय है।

ईश्वर, प्रकाशके परमाणुओंसे मन पंच ज्ञानेन्द्रिय, उनके परस्पर संयोग तथासूर्य आदिको रचता है। जो प्रकाशके परमाणुओं वा ज्ञानरूपी प्रकाशसे युक्त होनेके कारण सुर (देव) कहाते हैं और अन्धकारके परमाणुओंसे पाँच कर्मेन्द्रिय दश प्राण और पृथिवी आदि लोकों को रचता है। जो प्रकाश रहित होनेके कारण असुर कहाते हैं, उनका परस्पर विरोध रूपयुद्ध नित्य होता है।

देव संज्ञक मन तथा इन्द्रियगण प्राणादि असुरोंको जीत कर इनको अपने वशमें करके अपना काम लेते हैं किन्तु मृत्यु समय प्राण जिनको यम भी कहते हैं, प्रबलहो जाते हैं। तब येही गण मन इन्द्रिय आदि सहित जीवात्माको उसके कर्मानुसार जिस २ स्थानमें जानेका वह भागी होता है, वहाँ ले जाते हैं।

योग सिद्धि प्राप्त होनेका निश्चय

(तद्वेदयद्भुतम्० ऋ०) जिस प्रकार कोई अद्भुत वार्त्ता देख कर मनुष्य चकित होजाता है, ऐसा तीव्र और प्रबल पुरुषार्थ इन प्राणायामोंके अभ्यास करनेमें करना उचित है। अभिप्राय यह है कि चौथे प्राणायाम के सिद्ध होजानेके पश्चात्, जब निरन्तर (अनध्याय रहित) अधिक २ देरतक समाधिका अनुष्ठान करते २ कुछ काल व्यतीत होता है तो मनुष्यको अपने जीवात्माका ज्ञान होता है, तब चकित होकर बड़ा आश्चर्यसा उत्पन्न होता है जिसका वाणी द्वारा मनुष्य कथन नही कर सकता। तत्पश्चात् शीघ्रही परमात्मा को भी वह मनुष्य विचार लेता है, तबतो अत्यन्तही विस्मय से मनुष्य रह जाता है। अतः योगाभ्यासी ऐसा प्रबल प्रयत्न करे जिससे

आत्मा और परमात्माको जानकर मोक्ष प्राप्तहो। जीवात्माभी एक अद्भुत पदार्थ है। जिसको अपना ज्ञान जब होता है, तब अति विस्मित होता है।

* विधिपूर्वक प्राणायाम कब नहीं करना और कब करना *

(१) भूख प्यास अधिक लगी हो तो प्राणायाम नहीं करना।

(२) पेट भरा हुआ हो वा नाक का श्वास रुकता हो तो प्राणायाम नहीं करना।

(३) आनन्द से वा दुःख से चित्त चंचल हुआ हो तो प्राणायाम नहीं करना।

(४) शरीर में बहुत कष्ट वा श्रम हुआ हो अथवा नींद आती हो तो प्राणायाम नहीं करना।

(५) ज्वर आया हो वा शौच (दस्त) साफ न हुआ हो तो उस दिन प्राणायाम नहीं करना।

(६) खुले वायु में स्त्री बालक आदिकी गड़बड़ी में और शोक रहते प्राणायाम नहीं करना।

(७) दुर्गन्ध वायु में तथा क्रोध आया हो तो प्राणायाम नहीं करना।

(८) प्राणायाम सदा एकान्त में करना।

(९) प्रातः काल, मध्यान्ह, सायंकाल और अर्द्ध रात्रिमें करना।

(१०) नदी के तीर में, निर्जन स्थान में, तालाब के पास, बगीचे में और जहाँ निर्मल जल हो, सुगन्धि पुष्प हो, तुलसी वा बिल्वपत्र के वृक्ष हों, ऐसे अर्थात् मन को आनन्द देनेवाले निर्मल स्थल में प्राणायाम करना।

(११) घी का दिया, उत्तम चन्दन आदिका सुगन्ध, सुगन्धि पुष्प इनका जहाँ संग्रह हो ऐसे स्थान में स्वगृह अथवा कहीं भी प्राणायाम करना।

(१२) जब मनमें उत्साह हो, थकावट न हो तो प्राणायाम अधिक करने चाहिये। और उत्साह न हो वा थकावट हो तब थोड़े प्राणायाम करने चाहिये।

प्राणायाम महत्व

प्राणायाम शरीर यंत्रको सुरक्षित रखने के लिये एक कुंजी है। प्राणायाम से शरीर दृढ़ निरोग्य और तेजयुक्त होता है। चित्तमें प्रसन्नता होती है, अन्तः करण से अच्छे २ विचार उठने लगते हैं, मनकी चंचलता मिटके उसमें और अन्य इन्द्रियों में स्थिरता आती है, और मनुष्य दीर्घायु होते हैं। इस लिये कर्मशूर और मोक्ष की इच्छा करने वालों को ब्रह्म ज्योति प्राप्ति प्राणायाम का प्रकरण अवश्य ध्यान देकर देखना चाहिये और इसको उत्तम प्रकार से समझ बूझकर यथोक्त प्राणायाम करना चाहिये। जो स्वकल्याण रूप योग फल प्राप्त होनेके लिए प्राणायाम करता है वह विधिपूर्वक है; उसको निषिद्ध समय में करना उचित नहीं।

आत्म विश्वास

'य आत्मदा बलदा यस्य विश्वउपासते'० ॥ यजु० २५।१३

जो ईश्वर आत्म विश्वास और आत्मिक बल देता है इस-लिये जिसकी सब सज्जन उपासना करते हैं।

सज्जनों! आत्म विश्वास में एक प्रकार की बड़ी विलक्षण शक्ति है। अपनी शक्ति में विश्वास (Faith) चाहिए अन्यथा हाथ से कोई कार्य नहीं हो सकता। जिसका इस प्रकार अपने ऊपर विश्वास नहीं है उसको 'आत्मघातकी' कहते हैं। "तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनोजनाः" यजु० ४०।३ अर्थात् "आत्मघाती लोग अवनत होते हैं।"

"आत्मविश्वासी मनुष्य सदा विजयी होते हैं।" आपत्ति प्राप्त होने से उनका धैर्य द्विगुण होता है, दुःख में से सुखका

मार्ग उनको प्राप्त होता है, क्लेशों से आनन्द का धाम वे प्राप्त कर सकते हैं। जहाँ दूसरे हताश हो जाते हैं वहाँ उत्साह का तेज उनके मुख मण्डल पर चमकने लगता है। जो विपत्ति दूसरों को प्रतिबंधक होती है वही विपत्ति आत्म विश्वासी मनुष्यों को आगे बढ़ने के लिए कारणी भूत होती है।

उपाय:—

आप जो भक्ति दुर्व्यसनों में लगा रहे हैं वही अच्छे पुरुषार्थों में लगाइए, जो श्रद्धा हीन मार्ग पर रखी है वही अच्छे सीधे मार्ग पर रखिए, जो बल निन्दा में व्यय हो रहा है वही गुण ग्रहण करने में समर्पित कीजिए।

तात्पर्य्यः—कि आप थोड़ी सी अपनी दृष्टि की दिशा बदल दीजिए, फिर आप को पता लग जायगा, कि वही आपकी शक्ति, जो पहिले बाधक हो रही थी, वही किस प्रकार साधक हो सकती है और आपकी योग्यता कितनी ऊँची हो सकती है।

आपका विश्वास नहीं है तो न सही, चार छः महीने इस प्रकार निश्चय पूर्वक करके देखिए। यदि आप की हानि हुए तो "वैदिक धर्म" जिम्मेवार है।

* ओ३म् *

आत्मपरीक्षण

(५)

आत्म परीक्षण का अर्थ है "अपनी परीक्षा स्वयं करना।" यदि इस विश्वमें सबसे कठिन कोई बात है तो यही है। हर एक मनुष्य दूसरों की परीक्षा कर सकता है। जो भूल दूसरों की परीक्षा करने में नहीं होती, वही भूल अपनी परीक्षा करने के समय होती है, दूसरों के छोटे दोष भी बड़े प्रतीत होते हैं

और अपने बड़े दोष भी छोटे प्रतीत होते हैं। इस प्रकार विचार करने से हरएक विचार मनुष्य को प्रतीत हो सकता है, कि अपनी परीक्षा करने का कार्य कितना मुश्किल है। वैदिक धर्म में इसी लिये आत्म परीक्षा का महत्त्व बड़ा भारी माना है। आत्म परीक्षा के बिना धर्मका अनुष्ठान योग्य रीतिसे नहीं हो सकता। इसलिये ब्राह्मण ग्रन्थ में कहा है किः—

"यद्रात्र्या पाप मकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यांपद्भ्या मुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलंपतु यत् किंचि दुरितंमयि ॥तै० आ० १०। १५। १

"जो कुछभी पाप रात्रिके समय मैंने मन, वाणी, हाथ, पाँव, उदर, शिश्न आदि अवयवों द्वारा किया हो, उसका उच्चारण रात्रिके समय करके उस किये हुए पापके विषयमें पश्चात्ताप अवश्य करना चाहिए। रात्रिके पापके विषयमें प्रातः काल पश्चाताप करना और दिनमें किये हुए पापोंके विषयमें रात्रिके समय पश्चात्ताप करना तथा एकवार हुए पाप के विषयमें पुनः पुनः न करनेका निश्चय सबेरे और शामको करना।

इस प्रकार आत्म परीक्षण करते २ निश्चयके बलसे मनुष्य सुधरता हुआ, इतना शुद्ध होता है, कि उसके मनमें स्वल्पभी पाप संकल्प नहीं आते। यही अवस्था प्रत्येक मनुष्यको प्राप्त करना चाहिए।

मन का संयम इसलिये करना होता है। कि उसमें बुरे विचार ही उत्पन्न नहोसके। मनमें कुत्सितभाव जिस समय तक रहेंगे तबतक बुरे विचार उत्पन्न न होना सर्वथा असम्भव है। इसलिये मनको शुद्ध विचारों के वायुमण्डलमें सदा रखना चाहिए, इसलिए वेदने कहा हैः—

"भद्रंकर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्ये माक्षभिर्यजत्राः।

स्थिरै रंग स्तुष्टुवा ँ सस्तनू भिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥" (ऋग्वेद और यजु०)।

"कानोंसे अच्छा भाषण श्रवण करें। आँखोसे अच्छा रूप देखें। सुदृढ़ अवयवोंके साथ बलवान शरीरसे युक्त होकर श्रेष्ठोंकी प्रशंशा करें। और जब तक आयु होगी तब तक श्रेष्ठों का हित करें।"

यह वेद मंत्रकी सूचना सब मनुष्यों को मनमें धारण करना चाहिये। स्मरण रहेकि जिस प्रकार फटाहुआ कपड़ा योग्य समय पर नसीया जाय तो अधिक अधिक फटता चला जाता है उसी प्रकार मनकी अवस्था है। मनको कपड़ा समझिये और उसके दोषों को छेद समझ लीजिये। जितने दोष मनमें होंगे उतने छिद्र मन रूपी कपड़े में है ऐसा आप समझ लीजिये। यदि एक छोटासा छिद्र होने पर कपड़े की क्या अवस्था हो सकती है ? इसका विचार हर एक मनुष्य कर सकता है। वेदमंत्रमें यही विचार आया है।

"यन्मेछिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्धातु। शंनोभवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥" यजु० अ० ३६।२

"जो मेरी आँख, हृदय और मन आदि इन्द्रियोंमें फटा हुआ छिद्र होगा उसको ज्ञानका पालक ठीक करे। और जो बिश्वका स्वामी है वह हम सबके लिये शांति देवे।"

इस मंत्रमें मनके तथा इन्द्रियोंके छिद्रका उल्लेख अत्यन्त महत्व पूर्ण है। दोष और कुविचार ही मनके छेद हैं। इसलिये किसीको भी उचित नहीं कि वह अपनी इन्द्रियों द्वारा दोष करके इन्द्रियों को छिद्ररूप बनावे। स्वयं ही अपने कपड़ों को फाड़ नेके समानही उक्त आचरण है। ज्ञान के द्वारा मनको रोकने से दोषदूर हो जाते हैं। मनके विषयमें शिथिलता कभी नही रखनी चाहिए। ढीले मनके कारणही मनुष्यमें अशक्तता होती है। संयमके कारण मन बलवान होता है। इसलिये कहा है कि--

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः।" मै० उ०६।३४ 'मनुष्यों की पराधीनता के लिए मनही कारण है।' अर्थात् जिनका मन शुद्ध स्वतंत्र और प्रबल होता है वे परतंत्र नहीं बन सकते और जिसका मन अपवित्र, पराधीन और निर्बल होता है वे कभी स्वतंत्र नहीं हो सकते। इसलिये बन्धन और मोचन मनके ऊपर सर्वथा निर्भर है।

मनकी और इन्द्रियों की शुद्धि यदि प्राप्त करनी है तो आत्म परीक्षण अवश्य करनी चाहिए। प्रति दिन सायं और प्रातः अपनी परीक्षा करना उचित है। इस प्रकार जो अपनी परीक्षा करेंगे और मनके व्यापारों का निरीक्षण करेंगे उनकी उन्नति शीघ्रही हो सकती है।

आजही प्रारम्भ करो

नश्वः श्व इत्युपासीत।
कोहि मनुष्यस्य श्वो वेद ॥ शत० ब्रा० २।१।३।६
" कल करूंगा, कल किया जायगा, ऐसा न कहो।
कौन भला मनुष्य के कलकी बात जानता है।"

सबसे बड़ा आश्चर्य

इस विश्वमें स्थान स्थान पर आश्चर्य है परन्तु सबसे बड़ा आश्चर्य मनुष्य के व्यवहार में है। देखिये—

(१) मनुष्य बड़े नगर में रहना चाहता है। छोटे ग्राममें नहीं रहना चाहता। छोटे ग्राममें रहने से जल वायु सुगमता से विपुल प्राप्त होनेके कारण ग्रामीण मनुष्यों का स्वास्थ्य और और आरोग्य अधिक अच्छा होता है। बड़े नगरों में नाना व्याधियाँ मुफ्त में मिलती हैं। रोग और अशक्तताभी ग्रामों की

अपेक्षा नगरमें अधिक होती है। परन्तु सब की दृष्टि ग्रामों का छोड़ कर नगरों के तंग मकानों में घुसने की ओर अधिक रहती है।

(२) मनुष्य बड़े अच्छे मकान में रहना चाहता है। जितना व्यय मकान पर किया जाता है उसका शतांश भी शरीर को दीर्घजीवी और बलवान करने के लिये नहीं किया जाता। मकान और उद्यान की शोभा के लिये ख्याल रक्खा जाता है, उसका सौवाँ हिस्सा भी शरीर की नीरोग्यता के लिये नहीं दिया जाता।

(३) मनुष्य अपने कपड़े लत्ते, नेकटाय, कॉलर, बूट, सूट आदि में फैशन करने के लिये जितना व्यय करता है और जितना ध्यान देता है वैसा अपने शरीर का विचार नहीं करता, परन्तु वह नहीं जानता कि शरीर के लिये ही ये भूषण हैं न कि भूषणों और फैसनों के लिये शरीर है। बाहर के पहिनावे के लिये सब ध्यान रखते हैं और अन्दर के शरीर के लिये कोई देखता तक नहीं।

(४)-कई मनुष्य व्यायाम आदि करके अपना शरीर सुडौल करते हैं परन्तु इन्द्रियों को स्वाधीन रखने का यत्न नहीं करते। इससे यह होता है कि इन्द्रियों के दुराचरण में शरीर का नाश होता है।

(५) कई लोग विद्याभ्यास आदि द्वारा तथा अन्य विविध प्रकारों के नियम आदि द्वारा इन्द्रियों को स्वाधीन करने का यत्न करते हैं परन्तु अपने मन को स्वाधीन नहीं रखते, जिस के कारण मन के कुविचारों की आग में शरीर और इन्द्रियाँ भस्म हो जाती हैं।

(६) कई लोग सुविचार और ज्ञान संपादन द्वारा अपने मन को सुसंस्कृत करना चाहते हैं परन्तु अपनी बुद्धि का ख्याल ही नहीं करते। उनको पता नहीं होता है कि बुद्धि की

प्रेरणा से ही सब शरीर के आन्तरिक और वाह्य व्यापार चलते रहते हैं तथा बुद्धि की योग्यता से ही मनुष्य की योग्यता समझी जाती है।

(७) यदि कोई मनुष्य बुद्धि को विज्ञान सम्पन्न और शान्त करना चाहता होगा तो उसके आत्मा की शक्ति बढ़ाने का विचार तक नहीं होता। वह बुद्धि की यौगिक सिद्धियों और चमत्कारों में ही लीन हो जाता है।

तात्पर्यः—मनुष्य इतना वहिर्मुख हो रहा है कि उसके अपने अन्दर की अपेक्षा बाहर के पदार्थों का अधिक फिक्र है। यदि इस जगत् में सबसे बड़ा कोई भ्रम है तो यही है। प्रत्येक मनुष्य को सोचना चाहिए कि वास्तव में मुझे किसकी अधिक आवश्यकता है। मनुष्य के अन्दर निम्नलिखित शक्तियां हैं—

(१) 'आत्मा' सतत पुरुषार्थ करने का धर्म।

(२) 'बुद्धि'—अविकारी शुद्ध ज्ञान धारण करने का धर्म। भक्ति, श्रद्धा, विश्वासआदि का स्थान।

(३) 'मन'—चिन्तन, मनन, सारासार विचार करने का धर्म। तर्क वितर्क कुतर्क का स्थान।

(४) 'इन्द्रिय-ज्ञानइन्द्रिय'—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इन पांच विषयों का ग्रहण करनेवाले कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नाक ये पांच ज्ञानेन्द्रिय।

कर्मेन्द्रिय—शौच द्वारा (उपस्थ) जननेन्द्रिय, हाथ, पांव, और वाक् ये पांच कर्म करनेवाले इन्द्रिय।

(५) 'शरीर'—जिसके अन्दर उक्त इन्द्रियादिक रहते हैं और इनके अतिरिक्त भी बहुत से उत्कृष्ट साधन जिसमें विद्यमान हैं।

(६) 'विषय'—शरीर का उत्तम योग क्षेम चलने के साधन जो संपूर्ण जगत् में प्राप्त होते हैं।

सबसे अन्दर आत्मा है और क्रमशः बुद्धि आदि उसके बाहर हैं। अन्दर का बिगाड़ हो जाने से बाहर के स्वयं निकम्मे हो जाते हैं। इसलिये अन्दर के पदार्थों की ओर विशेष ध्यान से देखना चाहिए। परन्तु जगत् में सर्वसाधारण मनुष्य वाह्य पदार्थों का विशेष ख्याल करते हैं और अन्दर के मुख्य पदार्थों की ओर जाते तक नहीं। यदि जगत् में सबसे बड़ा कोई आश्चर्य है तो यही है। वास्तव में देखा जाय तो मनुष्य को उचित है कि वह आन्तरिक शक्तियों का विशेष प्रकार ठीक करे। परन्तु आन्तरिक शक्तियों का बिचार करनेवाले मनुष्य बहुत ही थोड़े होते हैं।

उक्त साधारण पुरुषों के मार्ग से भिन्न कई मनुष्य हैं कि जो वाह्य शक्तियों की ओर उदासीन रहते हुए केवल आन्तरिक शक्तियों का ही ख्याल करते रहते हैं। केवल वाह्य शक्तियों का ख्याल करनेवाले जैसे गिरते हैं वैसे ही केवल आन्तरिक शक्तियों के विचार करनेवाले भी गिर जाते हैं। दोनों शक्तियां, आन्तरिक और वाह्य परस्पर सहाय्यकारी हैं। किसी एक का त्याग करने से हानि है। इसलिये वैदिकधर्म में दोनों का सम विकाश करने की आज्ञा है।

वैदिक धर्म की दृष्टि से आत्मा, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, शरीर, घर, समाज, नगर, राष्ट्र आदि सब का विकाश योग्य रीति से करने की आवश्यकता है। किसी भी एक की ओर ध्यान न देना योग्य नहीं है। सभी अपने २ स्थान में मुख्य हैं और एक की उन्नति दूसरों की सहायता से होती है। वैदिकधर्म का लक्षण 'अभ्युदय और निश्रेयस' है। इनकी बांट निम्न-प्रकार है।

(१) 'निश्रेयस'—आत्मा, बुद्धि, मन, इन्द्रिय इनकी उन्नति पूर्णता और उनकी शक्तियों का विकाश।

(२) 'अभ्युदय'—शरीर, कुटुम्ब, घरजाति, समाज, नगर,

राष्ट्र आदि की उन्नति, पूर्णता और इनकी निज शक्तियोंका पूर्ण विकास।

अर्थात् अभ्युदय और निश्रेयस मिलकर धर्म हैं। इससे स्वयं पता लग सकता है कि "वैदिक धर्म" का कार्यक्षेत्र कितना सर्वांगपूर्ण है। अन्य धर्मों में इस प्रकार सम विकास का भाव नहीं है। किसी में एक बात की अधिकता है तो किसी में दूसरे बात की है। सब बातोंपर पूर्णतया समान विचार करनेवाला यही एक धर्म है।

परमेश्वर पर दृढ़ विश्वास और मनका सबल निश्चय इन दो साधनोंसे केवल अपने आरोग्य की प्राप्ति होती है परन्तु केवल इनही दो साधनोंके द्वारा दूसरोंको भी आरोग्य दिया जासकता है। योग साधनका यही फल है। जितना औषध आदि बाह्य साधनों पर विश्वास अधिक बढ़ेगा उतनी ही आरोग्यता कम होगी। इसलिये मनुष्यको अपनी बाह्यशक्तियों के साथ आंतरिक शक्तियोंके विकाशकी ओरभी अवश्यध्यान देना चाहिए।

मनुष्य आन्तरिक शक्तियोंको छोड़ बाह्य जगत्में ही केवल भ्रमते रमते रहते हैं यही सबसे बड़ा आश्चर्य है।

वैदिक धर्मका ओजस्वी उपदेश

"अदीनाः स्याम शरदः शतम् ॥" यजु० ३६। २४ "दीन न बनते हुए सौ वर्ष रहें।" वैदिक धर्मियोंको यह वचन सदा अपने सामने रखना चाहिए।

दीन और दुर्बल, हीन और कमजोर; निस्तेज और निर्वीर्य इस प्रकार जो हीन जीवन है, वह अधार्मिक जीवन है। जहां धर्म है, वहां अवश्य "अदीनता" रहेगा ही।

जो अपने आप को हीन दीन समझते हैं वे वेदका तत्त्व नहीं जानते। वेदमें परमात्मा के और जीवात्मा के नाम प्रायः एक ही है। "परमेष्ठी" शब्द का प्रयोग केवल परमात्मा

वाचक है, इसके सिवाय सबही नाम बहुत कर के दोनों के लिये समान ही हैं। जैसेः—

आत्मा, इन्द्र, अग्नि, ब्रह्म, सोम, वरुण, मित्र, पूषन आदि सबही शब्दप्रायः जीवात्मा परमात्मा के वाचक वेद में हैं। एक 'परमेष्टी' शब्दही ऐसा है जो जीवात्मा का वाचक नहीं है। परमेष्टीशब्द अपरिच्छिन्न आत्मा का अर्थात् परमत्मा का वाचक है, और परिच्छिन्न जीवात्मा के वाचक अन्यशब्द होते हुए साथ साथ परमात्मा के भी बाचक होते हैं। आप जानते ही हैं कि, वेद में सब नाम यौगिक और गुण बोधक होते हैं। सभी शब्द अन्वर्थक अर्थात् सार्थ हुआ करते हैं। इसलिये वेद जिसका जैसा वर्णन करता है, उस दृष्टि से वह वैसाही होता है।

जब दोनों के गुण बहुधा एक जैसें ही हैं तो जीवात्मा की हीनता कैसे सिद्ध हो सकती है?

आप जब अपनी शक्ति को जानेंगे तब आप अपने को हीन और दीन नहीं कहसकते हैं। वे हीन दीनता के विचार अवैदिक हैं। मतमतान्तरों के कारण ये वैदिक धर्मियों के मन में घुस गये हैं। और वैदिक धर्म का अभिमान जागृत होने पर भी, वेद मंत्रो के ज्ञान की जागृति न होने के कारण, इस समय में भी, वेही विचार हम में जैसे के तैसे ही हैं।

वेद आपको कह रहा है कि आप इस वाक्य का नित्य स्मरण रखिये कि "अदीनाः स्याम शरदः शतं। हम सौ वर्ष-पर्यन्त दीन और दुर्बल न होते हुए बढ़ते रहेंगे। पराधीन और परतंत्र कभी नहीं रहेंगे। स्वतंत्र्य और स्वावलम्बन हमारा नैसर्गिक अधिकार है। अपने मित्र और अपने साथी ऐसे ही चुन लीजिए कि जो उक्त प्रकार के विचारही धारण करते हैं।

आप यत्न कर के "अ-दीन" बनिए, आप अपने आपको निर्भय समझिए और उन्नति की शक्ति अपने ही अंदर अनुभव कर लीजिए। फिर आप सचमुच कह सकते हैं कि—

"अदीनाः स्याम शरदः शतम्। भूयश्चशरदः शतात्॥" य० ३६।२४

ओ३म्

आत्मसंरक्षण ।

(६)

जिस प्रकृति ने बालकों तथा सब प्राणियों को आत्म-संरक्षण करने की बुद्धि दी है, वही प्रकृति प्राणियों को नाना प्रकार की उपाधियों से बचाने के उपायों की पूर्ति करती है । पशु जब बीमार होते हैं तब वे भूखे रहते हैं । उपवास करने से व्याधि स्वाभाविक रीति से घटती है कहा भी है—"ज्वर दण्ड मुल्लङ्घनम्" ॥ ज्वरकादण्ड उल्लंघन (उपवास) है। पशुओं को यह नियम सृष्टि के आरम्भ से ही जैसा ज्ञान है उसी प्रकार अब तक उसी नियम पर चलते नज़र आते हैं । जब हमें कहीं चोट लग जाती है तब हम उस जगह पर हाथ फेरते हैं अथवा फूंक मारते हैं; पेट में दर्द होता है तब पेट पर हाथ फेरते हैं । इस प्रकार हम अपने शरीर की एक गुप्त शक्ति को काम में लाते हैं भेद केवल इतना ही है कि हमें उस शक्ति का ज्ञान नहीं । छोटा सा बालक जब भूखा होता है तब रोने लगता है। कुत्ते को या अनजान मनुष्य को देखकर चीख मारता है या आपही आप उससे दुर हटने लगता है। इसका कारण यही है कि प्रकृति ने उसे आत्म संरक्षण करने की बुद्धि दी है । अतः अपनी बुद्धि के अनुसार उसे जो कुछ भयंकर या भयप्रद प्रतीत होता है उससे वह भली भांति बचने और दूर रहने का प्रयत्न करता है ।

शक्तिका आकर्षण

इस बात का अच्छी तरह समझलो कि तुम्हारा शरीर तथा उस के आस पास का सारा जगत् एक अद्भुत् शक्ति से व्याप्त है । इस शक्ति से प्रत्येक व्याधिका निवारण होसकता

है। तुम्हारे आस पास जो वायु है तुम्हारी जीवन क्रिया कोपरिचालित करने के लिए तुम्हारे फेफड़ो में उसकी आवश्यकता है। परन्तु यदि तुम नाक बंद कर के बैठ रहोगे तो क्या वह अमृत वायु तुम्हारे शरीर मे प्रवेश कर सकेगी ? नहीं। तुमको इच्छा शक्ति के बलद्वारा नाक के द्वारों को खोलना पड़ेगा और फेफेड़ों को खाली करना पड़ेगा, जिस से वायु अपने आप ही तुम्हारे शरीर में प्रवेश करेगी। इस विश्व में अनन्त शक्ति भरी हुई है और तुमशक्ति समूह के बीच में बैठे हो। अब तुम्हें केवल इच्छाशक्ति का उपयोग करना सीखना है। इच्छा से उस शक्ति को शरीर में खींचना सीखो। वह तुम्हारी आज्ञा के वस में है तुम ऐसा अनुभव करो कि वह अनन्त शक्ति मेरे शरीर में प्रवेश कर रही है, मेरे शरीर के अवयव उससे पूर्ण होरहे हैं और नये रजः कण बन रहे हैं। बस इतनी इच्छा शक्ति दृढ़ता पूर्वक करो और फिर क्या चमत्कार होता है उसे देखो।

मनोबल की महिमा

मनोबल की महिमा योगमंडल काशी द्वारा प्रकाशित मनो योग प्र० द्वि० पुष्प में विशेष रूप से मैंने लिखा है कुछ अंश साधारणतया यहाँ भी लिखता हूँ। शरीर के ऊपर मनका पूर्ण अधिकार है, इस बात को सभी मानते हैं। जैसेः—

१—जब कोई क्रोधित होता है तो उसका नेत्र लाल हो जाते हैं।

२—जब कोई भय युक्त होता है तब उसका मुख मलिन पड़ जाता है।

३—निद्रित होनेपर स्वप्नावस्थामें कभी २ किसी से लड़ने का अवसर देखने में आता है उस समय मुख से भयावह शब्द निकलते हैं और हाथ पैर भी फेंकने में आते हैं।

४-स्वप्न में कामवश होने से वीर्य्यस्राव हो जाता है।

५-किसी कार्य्य से किसी को ३० मील के स्थान पर जाना हो और उसे दस मील ही चलने पर थकावट होते हुए भी यदि कोई ऐसा समाचार सुना देता है जिससे पथिक उत्तेजित हो बीस मील जो शेष रह गया है उसे पूर्ण करने,पर भी उसे थकावट नहीं मालूम होता।

६-किसी के यहां विवाहादि का उत्सव हो अथवा कोई बीमार हो उस समय मनकी उत्तेजित अवस्था में रात्रिन्दिवस चलने फिरने पर भी श्रम प्रतीत नहीं होता।

७-योद्धा सीपाही साधारण रुग्णावस्थामें अकस्मात् युद्धारम्भ का बिगुल सुनकर उस सिपाही को भी वीरत्व भाव आ जाता है और उत्तेजित होकर रणक्षेत्रकी ओर दौड़ जाता है। मैं पूछता हूँ कि उपरोक्त अवस्थाओं में बल किसका है? मनका या शरीर का? शरीर के ऊपर मनका पूर्ण अधिकार है, इस बात को सभी मानते हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि शरीर पर मनका बहुत बड़ा प्रभाव है। व्यायाम (कसरत) सिखाने वाले शिक्षक उपदेश दिया करते हैं कि शरीर को दृढ़ करने वाली कसरत करते समय मनको भी कसरत में लगाना चाहिए। मैं बलवान् होता जाता हूँ ऐसी भावना करनी चाहिए अन्यथा कसरत से कुछ लाभ नहीं होता। जैसे किसान खेत के साथ कितना परिश्रम करता है परन्तु बलवान उस प्रकार नहीं होता जिस प्रकार कसरती मनुष्य होता है। कारण कि उसका मन खेतमें परिश्रम के साथ बलवान बनने की तरफ नहीं होती। इससे यही निश्चय हुआ कि जिसप्रकार मनोदेश्य के साथ कार्य्य कोई करेगा वह उसीप्रकार बन जावेगा। यदि तुम्हें इस पुस्तक में बतलाई हुई गुप्त क्रियाओं से लाभ उठाना हो तो तुम इनदो उपयोगी और कार्य्य में लानेयोग्य सिद्धान्तों को स्वीकार करलो,—एक तो तुम्हारा मन बहुत

सामर्थ्यवान् है और दूसरा तुम्हारा मनका तुम्हारे शरीरपर पूर्ण अधिकार—है इन दोनों सिद्धान्तों को स्वीकार करके आगे बढ़ो, इनका अनुभव करो और प्रयोग करके देखो।

मन को क्रिया विभाग

मनतो एकही है और वह विभक्त नहीं हो सकता तो भी उसके द्वारा होनेवाली भिन्न क्रियाओं और व्यापारों को लक्ष्य करके मानस शास्त्री उसे एक तो आन्तरिक क्रियाओं का करनेवाला और दूसरा बाहर की क्रियायें करनेवाला ऐसे दो नाम देते हैं। जैसे महासागर का पानी तो सर्वत्र एकही है, परन्तु भिन्न देशों के समीप आने से उसके पृथक २ नाम पड़ जाते हैं—कोई भूमध्य समुद्र, लालसागर, काला सागर, भारतीय सागर इत्यादि। (१) बाहरी क्रियाओं का करनेवाला मन—विचार करता है, तर्क करता है, अनुमान करता सिद्धान्त करता है और उन्हें सिद्ध करता है तथा हाथ पैर आदि शरीर के सब अवयवों के नाड़ियों को गति देता है।

(२) 'आन्तरिक क्रियायें करनेवाला मन'—संस्कारों को, सिद्धान्तों को ग्रहण करता है, आवश्यकता पड़नेपर उन्हें अपने भण्डार में से बाहर निकालता है और शरीर के भीतर अवयवों की गति को नियमित करता है।

स्मरण रहे कि इन्हीं उपरोक्त दोनों क्रियाओं से तुम्हारे शरीर में रुधिर रात दिन घूमा करता है, हृदय निरन्तर धड़कता रहता है, पाचन क्रिया के अवयव भोजन में से पोषकत्व खींचकर शेषको मल के रुप में बाहर निकाला करते हैं, । स्वप्न में मच्छर या कोई दूसरा जंतु काटता है तो उसका प्रतीकार करने के लिये हाथ ऊँचा उठाता है। ये और ऐसी २ सबही क्रियायें मन के द्वारा होती हैं। इन क्रियाओं पर तुम्हारा अधिकार नहीं है। तुम अपनी इच्छा के अनुसार

रुधिर की गति में या हृदय के स्फुरण में फेर फार नहीं कर सकते हो। परन्तु इसी मन पर आगे की बनाई हुई क्रियाओं के द्वारा तुम्हें अधिकार प्राप्त करना है। उसेही तुम्हारी इच्छानुसार कार्य करने वाला बनाना है। जो तुम इतना कर सके तो समझना कि तुम्हारा कार्य सिद्ध हो गया।

साधना

तुम्हें इस बात को जान लेना चाहिए कि तुम्हारा अन्तरिक मन जो शरीर के अंदर की क्रियायें करता है, बहुत कोमल और संस्कारग्राही है और वाह्य मन स्वतंत्रता प्रिय और स्वतंत्र काम करने वाला है। साधना रुपी मार्ग पर चलने वाला प्रत्येक शिष्य को स्मरण रखना चाहिए कि जबतक वाह्य मन चंचल है, तब तक तुम्हारी आज्ञायें और सूचनायें आन्तरिक मन तक कदापि नही पहुंचेगी। इसलिये पहले वाह्य मन को स्थिर करना चाहिए, अथवा उसे सुषुप्ति अवस्था में लाना चाहिए। जब मालूम हो कि वाह्य मन सुषुप्ति अवस्था में है अथवा स्थिर होगया है, तब आन्तरिक मन को जो आज्ञायें देनी हों, दे डालो, जो संस्कार डालना है डाल दो, वे सब सफल होंगे। इनसे लाभ उठाकर बलवान् और विजयी होना अथवा लाभ उठाकर दुर्बल और पराधीन रहना, सम्पूर्ण व्याधियों और कुटेवों को पराजय करने में भी सकुशल होना इत्यादि स्वयं तुम्हारे ही हाथ में है। (इसलिए साधन के द्वार में प्रवेश करने के पहले तुममें दृढ़ता और और आत्मश्रद्धा के होने की बड़ी आवश्यकता है। यह राजयोग की 'प्रवेशिका परीक्षा' है।

प्रथम परीक्षा विधिः—

साधक को प्रथम परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए निम्न प्रकार साधन करना चाहिए।

(१) दृढ़ता, आत्मश्रद्धा और मनोबल को अपना साथी बनाकर तथा अपने बाह्यवृत्तिओं को बाहर ही रखकर किसी एकान्त गृह के कोठरी (कमरे) में जाकर उसके दरवाजे का बन्द कर दो।

(२) संशय रहित होकर प्रसन्न चित्तसे पद्मासन लगा कर बैठ जाओ यदि पद्मासन लगाने में अभ्यास न होतो एक आराम कुर्सीपर सो जाओ। यदि आराम कुर्सी न होतो दरी पर सिर और पैर के नीचे तकिया रख कर लेट जाओ।

(३) फिर अपने हाथों, पैरों और गर्दन की नाड़ियों को शिथिल करदो अर्थात् हाँथ पैरों को बिलकुल ढीले करदो; कपड़े के समान नरम हो जाओ, मानो शरीर में बिलकुल शक्ति ही नहीं है।

(४) शिथिल हो चुकने पर अब धीरे से गहरी श्वास लो. फेफड़ों और छाती को वायु से भर डालो, और वायु को नाभि पर्यन्त जानेदो। और जैसे धीरे २ श्वास लीथी उसी प्रकार उसे धीरे २ छोडदो। परन्तु श्वास लेने और बाहर निकालने पर दोनों अवस्था में सुख पर्वक जितने समय तक ठहर सको ठहरो। इस प्रकार कम से कम १० मिनट तक शान्ति पर्वक नित्य अभ्यास करना चाहिए।

(५) श्वास. प्रश्वास के बीच २ में 'ओ ३ म्' का मानसिक जाप और भी विशेष लाभ दायक होगा।

यदि अभ्यासी इन पांच प्रक्रियों के अनुसार अभ्यास करेगा तो उसका वाह्य मन स्थिर हो जायगा और आन्तरिक मन उसकी आज्ञायें ग्रहण करने को सदैव तत्पर रहेगा। ऐसी स्थिति प्राप्त होने पर तुम को ऐसा भासने लगेगा कि सारे संसार में मेरे सिवा और कोई नहीं है। इतना हो चुकने पर निम्न लिखित महा वाक्य के भाव को हृदयङ्गम करना चाहिए। प्रत्येक वाक्य कहते समय उसका जो भाव हो, तुम

यथार्थ में वैसेही हो .ऐसी दृढ़ धारणा करनी चाहिये। ऐसी धारणा करो कि हमारे हाथ, पाँव, पीठ, छाती आदि सब स्नायु (नाड़ी) बद्ध और रुधिर से परिपूर्ण हैं। थोड़े समय के पश्चात् तुम्हें इस क्रिया का चमत्कार दिखाई देगा।

महा वाक्य

(१) "मैं अपने शरीर का स्वामी हूँ, २ मैं सुरूप हूँ, ३ मैं बलवान हूँ, ४ मेरा रुधिर सब नाड़ियों में निरामय (रोग रहित) वेग से भ्रमण करता है, ५ मेरे फेफड़े और हृदय अपना कार्य्य नियमित रीति से करते हैं, ६ मेरी जठराग्नि उत्तमरीति से अन्नको पचाती है और उससे शुद्ध रुधिर उत्पन्न होता है, ७ आँतें निरुपयोगी मल को बाहर निकालती है।

इस प्रकार अपनी भूली हुई शक्तियों को नित्य ५ से १० मिनट तक स्मरण कर लेने से तुम अधिक समय तक एकही विचार में मग्न रहना सीखजावोगे और वैसेही अधिकाधिक बल और आरोग्यता प्राप्त करने लगोगे।

प्रातः तथा सायंकाल की क्रिया

सदैव बिस्तरे से उठकर छतपर जाओ, यदि छत नहो तो कमरे की सब खिड़कियाँ खोलकर एक खिड़की के सामने खड़े हो जाओ। फिर अमृतमय वायु से फेफड़ों को भरो और तुरन्त ही खाली करो। इस प्रकार दीर्घ श्वास-प्रश्वास की क्रिया जब तक बन सके करो। जब फेफड़े श्रमित हुए मालूम पड़ने लगें, हृदय जोर से धड़कने लगे, और रक्त खूब तेजी से दौड़ने लगे तब इस क्रिया को बंद कर दो और आराम करो। इस प्रकार प्रातः और सायंकाल को खुली हवा में दीर्घश्वास—प्रश्वास लेने की क्रिया करो।

दूसरी कसरत

सीधे खड़े हो जाओ। पैरों और जंघाओं के नाड़ियों को

खड़े करदो। एक दीर्घ श्वास लो और वायु को फेफड़ों में में रोक रक्खो। एड़ियों को ऊँचा उठाकर अँगूठे और अँगुलियों पर शरीर का सारा भार रखकर खड़े हो जाओ। फिर धीरे धीरे पैरों को नीचे आने दो और साथही साथ फेफड़ों में रोकी हुई श्वास को धीरे धीरे नाक के नथनों द्वारा बाहर निकालते जाओ। फिर निम्न प्रकार एक शोधक प्राणायाम करो।

शोधक प्राणायामकी क्रियाः—

धीरे २ नाकके नथुनों द्वारा एक श्वास लो और जब तक सरलता पूर्वक उस फेफड़ों में रोक सको रोको। फिर जैसे सीटी बजाते हैं उस प्रकार जोर से मुख द्वारा श्वास को बाहर निकालदो। ये कसरतें और क्रियायें यथा शक्ति करनी चाहिए।

तीसरी कसरत

बिलकुल सीधे खड़े हो जाओ, छाती आगे निकालो, गर्दन थोड़ा पीछे करो और कन्धों को भी कुछ पीछे की ओर हटाओ। फिर एक दीर्घ श्वास लो। साथ ही दोनों हाथ आगे लाओ और मुट्ठी बांधकर जोर से कन्धों के पास ले जाओ। इस प्रकार कई बार करो। ऐसा करते समय हाथों में खूब ताकत रक्खो यहांतक कि वे सहज ही कांपते हुए मालूम पड़े। फिर हाथों को जैसे थे वैसे करके बिलकुल ढीले कर दो। फिर फेफड़ों में रोकी हुई हवा को मुख द्वारा जोर से बाहर निकाल दो और एक शोधक प्राणायाम जैसा कि ऊपर लिख आए हैं करो। ये कसरतें शरीर के ज्ञान तन्तुओं को बहुत बलवान बनाती हैं ये तीनों कसरतें बहुत ही आवश्यक और महत्व की हैं। स्मरण रहे कि कसरत, प्राणायाम और इच्छाशक्ति इन तीनों का एकत्र उपयोग करके जो बल उत्पन्न होता है वह अन्य किसी तरह की कसरत से प्राप्त नहीं होसकता।

अमृत

"यस्यच्छायाऽमृतम्" ०यजु०अ० २५ मं० १३=(यस्य) जिस 'परमात्मा' को (छाया) आश्रय ही (अमृतं) मोक्ष सुखदायक है। उसी परमात्मा की छाया में तुम्हें एक अद्भुत चमत्कारिक और बलबर्द्धक प्रयोग को बताता हूँ। सैकड़ों वर्षों से जिस अमृत को खोजने के लिए लोग प्रयत्नशील थे। यह सच्चा अमृत कोई पेटेंट दवा या पौष्टिक वस्तु नहीं है, यह मंत्रित ताबीज या डोरा भी नहीं है, परन्तु यह योग की एक क्रिया है। यह क्रिया इतनी सरल है कि इसे हर कोई कर सकता है। विधिः—

(१) तुम अपने गृह के किसी एकान्त कोठरी (कमरे) में प्रवेश करो और अपने मन की व्यग्रता, चिन्ता, तर्क-वितर्क आदि सब को दूर कर डालो।

(२) फिर प्रसन्न चित्त से एक आसन या आराम कुर्सी-पर बैठ जाओ और कुछ समय तक दीर्घ श्वास लो, दश-पन्द्रह बार जोर से प्रणव 'ओ३म्' का उच्चारण करो और फिर ऊपर बतलाई हुई रीति के अनुसार शिथिल हो जाओ।

(३) शिथिल हो जानेपर तुम अपने मन और शरीर की परीक्षा करो। नेत्र बन्द कर के ऐसी भावना करो कि "मेरे आस पास का समस्त वातावरण एक परम चेतन शक्ति से भरपूर है। यह चेतन विश्वव्यापी है। इस अनन्त चेतन समुद्र के मध्य हम अकेले बैठे हुए हैं। सारे संसार में हम और चेतन शक्ति (परम पिता परमात्मा) के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।" तुम अन्य सब मनुष्यों को-सब पदार्थों को-थोड़ी देर के लिये भूल जाओ।

(४) फिर भावना करो कि "मैं इस चेतन सागर में गोता लगा रहा हूं। चेतन से व्याप्त हो रहा हूं।" इस समय तुम

अपने शरीर और मनको कपड़े के समान ढीला करदो भावना अर्थात् कल्पना को खूब तेज करो।

(५) फिर कल्पना करो कि चेतन की लहरें एक के बाद एक चारों ओर से तुम्हारे शरीर में प्रवेश कर रही हैं, वे तुम्हारे शरीर की प्रत्येक रग और परमाणु को नया बनाती हैं। इस समय ऐसा विचार करो कि तुम प्रत्येक श्वास द्वारा जगत में से शक्ति का आकर्षण करते हो और उस के द्वारा तुम्हारा शरीर बलवान और तेजस्वी बनता है। फलः—

यही सच्चा अमृत है इस के द्वारा ऋषि लोग दीर्घ जीवी होते थे और तुम भी हो सकते हो। इसी के द्वारा तुम अपनी आत्मा को पहिचान कर परमात्मा के बोधामृत से कैवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति कर सकते हो।

सूर्य्य किरणों द्वारा नवजीवन प्राप्ति विधि

ऊपर बताई हुई रीति के साथ २ सूर्य किरणों में व्याप्त प्राणों को पोषण करने वाली महती शक्ति का आकर्षण किया जा सकता है। प्रचीन ऋषि लोग निम्न लिखित क्रियाओं द्वारा सूर्य्य में से विद्युत् शक्ति और ऐसे दूसरे आयुष्य बर्धक तत्वों को शरीर में खींचते थे विधिः—

प्रातः काल के पहले प्रहर में जब सूर्य्य की धूप तेज नहीं 'होती' एक वस्त्र पहन कर और बाकी शरीर खुला रख कर अपने दोनों पैरों की एड़ियों को मिला कर V इस भांति पैर कर के अपने दोनों हाथ मस्तक के भृकुटि पर V इस भांति दोनों तर्जनी के मूल को मिला कर नीचे की ओर झुका कर सूर्य की तरफ ३ मिनट त्राटक (एकटक) देखने पश्चात् दोनों आंखों में अपनी अंगुलियों को ११ बार स्पर्श करो। इस प्रकार तीन बार ८ मिनट में स्पर्श करना चाहिए। फिर बैठ जाओ और नेत्र बन्द कर के ऐसी कल्पना (विचार)

करो कि "जो सूर्य्य किरणें हमारे शरीर पर पड़ रही हैं और जो हमारे चारों ओर फैल रही हैं, उन सब में रहने वाली शक्ति हमारे शरीर में प्रवेश कर रही है।" थोड़ी देर बाद तुम्हारा सारा शरीर किसी अलौकिक बिजुली जैसी शक्ति से चमक उठेगा और तुमको नवजीवन प्राप्त होगा। तुम जीवन के सच्चे आनन्द का अनुभव करने लगोगे! सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ ऋ० १।११५।१ "सूर्य्य स्थावर जंगम जगत् का आत्मा है।" "आदित्योहवै प्राणः" प्रश्न उ० १।५ आदित्य ही निश्चयसे प्राण हैं।

रात्रिको निद्रा के पूर्व करने की क्रिया

सोने के पहले निम्न लिखित क्रिया को करने का अभ्यास डालो। बिछावन पर चित्त लेट जाओ। पैरों के नीचे भी एक तकिया रक्खो अर्थात् सिर के समान पैरों को भी कुछ ऊँचाई पर रक्खो ताकि दोनों की समानता रहे। कुछ दीर्घ श्वासलो और शिथिल हो जाओ। फिर सिर, नेत्र, गर्दन, छाती, पैर आदि एक के बाद एक अवयव पर जहाँ तक तुम्हारा हाथ पहुंचे थोड़ी देर तक हाथ रख कर ऐसी दृढ़ भावना (विचार) करो कि प्रत्येक अवयव अपना कार्य नियमित रूप से कर रहा है। यदि तुम्हारे अवयव में कोई व्याधि है तो उस अवयव पर अधिक समय तक हाथ रक्खो और ऐसी भावना करो कि व्याधि निर्मूल होरही है। तुम अपनी भावना शक्ति कम मत समझो तुम्हारी भावना के द्वारा केवल तुम्हारे शरीर का ही नहीं, वरन सारे संसार का परिवर्त्तन हो सकता है। मनुष्य की भावना 'इच्छा शक्ति का बल (Will power) बहुत अत्यन्त बली है। तुम मनुष्य हो; मनुष्य होने का सत्व क्यों अपने हाथों द्वारा खोते हो? अपने हाथों से क्यों दरिद्र निर्बल बनते हो?

जब निद्रा देवी तुम्हारी आंखों पर अपना अधिकार जमाने लगे तब एक अन्तिम भावना करके उस देवी के अधीन हो जाओ। तुम ऐसी भावना करो कि प्रातः काल जब मैं सोकर उठूं तब मेरा शरीर पूर्ण रूप से स्वस्थ और ताजा हो, मस्तक हलका और प्रफुल्लित हो। बस ऐसी भावना कर के सो जाओ। जब तुम प्रातः काल सो कर उठोगे तब तुम्हें मालूम होगा कि तुम्हारा शरीर स्वस्थ और निरोगी है। तुम्हारा शरीर तो यंत्र है, उसे तुम जैसा बनाना चाहोगे वैसाही बन जायगा।

व्याधि निवारण विधि

यदि शरीर में कोई खास व्याधि होतो उसका निवारण करने के हेतु निम्न प्रकार की क्रिया करनी चाहिए। शरीर के जिस भाग में दर्द होता हो अथवा जिस अँग में व्याधि हो उस पर अपना हाथ रक्खो। (अब यह कहने की आवश्यकता नहीं रही कि कोई भी क्रिया करने के पहिले दीर्घ श्वास लेने और शरीर शिथिल करने की नितान्त आवश्यकता है। तुम को यह भी मालूम होगा कि किसी भी धर्मिक क्रिया के आरम्भ में आचमन और प्राणायाम करने का विधान है और वह सकारण है) फिर तुम अपनी चित्त की वृत्ति को व्याधि स्थान पर स्थिर करो। मानलोकि तुम्हारी छाती में दर्द है, तो उस समय शरीर के और किसी अवयव की ओर मन न ले जाकर केवल छाती की ओर मन लगाओ—मानों कि उसके सिवा तुम्हारे और कोई अवयव है ही नहीं। ऐसा करने से वह अवयव तुम्हारी चित्त वृत्ति का केन्द्र बन जायगा और उस जगहपर तुम अधिक आत्मबल डाल सकोगे। जैसे सामान्य काँच के द्वारा अग्नि पैदा नहीं होती, परन्तु सूर्य्य कान्तिशीशेके बहिर्गोल काँच को सूर्य की धूप में रक्खो तो उस पर पड़ने वाली सूर्य की समस्त किरणें उसके मध्यबिन्दु

पर इकट्ठी हो जाती हैं और उसके नीचे वाले पदार्थ में अग्नि उत्पन्न कर देती है, उसी प्रकार तुम्हारी भटकती हुई वृत्तियों द्वारा रोग दूर नहीं होता, परन्तु उन सब वृत्तियों को किसी अवयव पर स्थिर करने से अद्भुत परिणाम दिखाई देता है। जिस अंग में व्याधि हो उस पर मनकी वृत्तियों को स्थिर करने के उपरांत ऐसी कल्पना करो कि उस जगह से व्याधि हटकर प्रश्वास द्वारा बाहर निकलती जाती है और जो श्वास तुम भीतर खींचते हो उसके द्वारा तुम्हारे शरीर बल और जीवन का संचार होता जाता है। इसके पश्चात् एक प्रबल आज्ञा करो कि व्याधि मात्र मेरे शरीर से बाहर निकल जाय। फिर तुम उसी क्षण किसी प्रकार शंका किये बिना ऐसी कल्पना करो कि हमारे शरीर से एक मलिन श्वास द्वारा वह बाहर निकल रही है। तुम सद्विश्वास रक्खो कि वह अवश्य निकल जायगी। तुम इस तरह एक बार देखो कि आज्ञा का कैसा प्रभाव पड़ता है। मैंने अपने व्याधियों को स्वतः निर्मूल किया है। मानलो कि तुम्हें कब्जियत अर्थात् अपच की बीमारी है। अब तुम सोते समय पेटपर हाथ रख कर आज्ञा करो कि सब मल प्रातः काल निकलने के लिये तैयार होजाय। फिर कल्पनाकरो कि जठराग्नि, तिल्ली आंते इत्यादि सब काम कर रहे हैं और मल पृथक् हो रहा है। दो चार दिन ऐसा करो और फिर देखो कि उसका क्या परिणाम होता है। हम, समझते हैं कि कदाचित् दूसरे दिन ही तुम को लाभ दिखाई देगा, परन्तु यदि तत्काल लाभ न दिखाई दे तो भी उसे सहसा मत छोड़ो। क्योंकि फल प्राप्ति में विलम्ब होने का एक मात्र कारण क्रियामें शिथिलता होना है। क्रियाओं में दृढ़ श्रद्धा और पूर्णता होतेहीफल अवश्य मिलता है—यह आध्यात्मिक तत्वका अटल नियम है। इस रीति के द्वारा तुम प्रत्येकव्याधियों को दूर कर सकते हो।

जल पान और भोजन करने की किया

जब तुम जल पान करो, तब एक दम शीघ्रता से मत पी जाओ, जिस प्रकार गरम दूध पीते हो उसी प्रकार धीरे धीरे एक एक घूँट करके पिओ। पानी पीते समय ऐसी भावना करो कि पानी में जी न तत्व है और वह हमारे भीतर प्रवेश कर रहा है। प्रत्येक घूँट लेते समय 'ओ३म्' का उच्चारण करो। भोजन करते समय भी तुम ऐसाही कल्पना करो कि मैं प्रत्येक चीज में से पोषक तत्व का ग्रहण कर रहा हूँ। बार बार ओंकार का उच्चारण करो। हमेशा प्रसन्न रहो। चिन्ता और व्यग्रता को कभी मनमें न आनेदो। बीमारी की बातें न कभी करो और न कभी सुनो। तुम्हारे शरीर और तुम्हाराही पूरा अधिकार है और किसी का नहीं। किसी को कभी मत भूलो। तुम्हारी इस भावना में परमात्मबल है, इसको स्मरण रक्खो।

द्रष्टव्यः-पूर्व लेख में कई स्थानों में भावना, कल्पना, विचार ये शब्द आये हैं इनके अर्थ परस्पर एकहीं हैं। परन्तु मैं ने सत्य की सत्यसे भावना, कल्पना, विचार उत्पन्न कराने से निमित्त इन शब्दों का प्रयोग किये हैं यहां पर इसलिए इन शब्दों का विवेचन किया है कि संसार में मिथ्या भावना, मिथ्या कल्पना, मिथ्या बिचार का भी प्रयोग भाषण तथा व्यवहार होने से पठित जन उसे सत्य समझने में दूर रहते हैं।

मन शुद्धि का उपाय

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति। विद्या तपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥ मनु०॥

अर्थात् जिस प्रकार जलोंसे शरीरों की शुद्धि होती है, सत्य बोलने, सत्य काम करने, सत्य जानने, सत्य मानने तथा सत्य विचारने से मनुष्य का मन शुद्ध होता है। विद्या (वेदादिब्रह्म-

विद्या) और ब्रह्मचर्य रूप तपसे आत्मा की शुद्धि होती है। ब्रह्म ज्ञान से बुद्धि पवित्र एवं परिमार्जित होती है। सब से अधिकावश्यक अन्न की शुद्धि है - अर्थात् अपनी शुद्ध कमाई करके सात्वकी तथा शुद्ध अन्न खाने तथा सत्सङ्गति से मन और बुद्धि में पवित्रता आती है। रिशवत, चोरी, डकेती, हरामखोरी का माल और मांस, शराब आदि के खान पान और व्यभिचारी, मांसाहारियों की कुसंगति से मन, बुद्धि भ्रष्ट रहती है। इसलिये इनका त्याग श्रेयस्कर है। शुद्ध मन और बुद्धिवाला मनुष्यही ईश्वर के योग के लिये योग्य होता है। मैले मनका नहीं। लोक में भी मैला मनुष्य राजा आदि से नहीं मिल सकता न मैले मकान में किसी बड़े पुरुष को बुला सकता है।

* ओ३म् *

वैदिक चिकित्सा महत्त्व

(७)

परमपिता जगदीश्वर ने जिसप्रकार अपने प्यारे पुत्रों के कल्याणार्थ चार वेदों द्वारा पवित्र विचार, पवित्र कर्म, चित्त की एकाग्रता और ब्रह्मज्ञान का उपदेश किया है उसी प्रकार आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तीन तापों से होने वाले व्याधियों के विविध प्रकार की चिकित्सा भी वर्णन किये हैं। यथा—

(१) मानस चिकित्सा, (२) वायुचिकित्सा (३) सौर चिकित्सा, (४) अग्नि चिकित्सा, (५) हवन चिकित्सा (६) जल चिकित्सा, (७) औषधि चिकित्सा इत्यादि। वेद की इन चिकित्सा-पद्धतियों को सूक्ष्म विचार करने से पता लगता है कि वेद भगवान् सम्पूर्ण व्याधियों को दूर करने के लिए इन उपरोक्त सात चिकित्साओं में दो प्रकार की अर्थात् सूक्ष्म और स्थूल क्रियाओं द्वारा विधि बतलाये हैं। प्रथम अवस्था

में मनुष्यों की औषधि वनस्पतियां, दवाइयां, गोलियां
आदि पर विशेष रहती हैं। यह बिलकुल स्थूल की भक्ति है।
इस कारण जो वैद्य मन की चिकित्सा करने के बिनाही
शरीर में दवाइयां ठोंस देते हैं वेस्थूल दृष्टि के वैद्य होते हैं।
कारण कि मन के अधीनही सबका शरीर होता है, जब तक
मन कमजोर और दुषित न होगा तब तक कोई बीमारी
होही नहीं सकती। इसलिये प्रत्येक रोगीके मन की चिकित्सा
प्रथम होना आवश्यक है। वेदके शौर्य— वीर्य युक्त ओजस्वी
समय में शरीर का जो वैद्य होता था, वह मन का भी चिकि-
त्सक हुआ करता था। वेद में आत्मा कोभी दिव्यवैद्य अर्थात्
सच्चा वैद्य कहा है। वैद्य शब्द के नाम जीवात्मा और पर-
मात्मा वाचक दोनों आए हैं। इससे सूचित होता है कि शरीर
में सच्चा वैद्य जीवात्मा है और जगत् में परमात्मा है वैद्य के
औषध रोगी का आत्मिक बल हट जाने के पश्चात् कोई सहा-
ता नहीं करते, और जिसमें आत्मिक बल की तीव्रता होती
वह विना औषध की सहायता के, अपने मनः शक्ति और
प्राणशक्ति के द्वाराही रोगों को हटा सकता है। स्थूल से सूक्ष्म
तक ले जाने की वेद की यही खूबी है । वैदिक धर्मी मनुष्यों
को उचित है कि वे योग साधनादि द्वारा अपने मानसिक
और आत्मिक शक्तिको बढ़ावें और इसी सच्चे दिव्य वैद्य से
अपने तथा दूसरों के रोग दूर करें। आप व्यक्ति, राष्ट्र और
जगत् में सर्वत्र देख सकते हैं कि स्वावलम्बन ही सुख है।
अपनी धारणा शक्तिसे स्वयं स्थिर रहना सुख का साधन है,
जब तक वैद्य और औषधियों परही रोगी का विश्वास रहता
है, तब तक रोगी को दुःख भोगना आवश्यक ही है। परन्तु
जब उस रोगी को पता लग जायगा, कि " मैं स्वयं आत्म
रूप से दिव्य वैद्य हूं अब सब औषधियों की सम्पूर्ण शक्तियां
मेरे मन में सदाही सिद्ध हैं और मैं अपनी इच्छा शक्ति के

बल से अपने तथा अन्यों के रोग हटा सकता हूं, तब ही सुख के लिए वह अधिकारी होता है"। यही स्वतंत्र्य और स्वाधीनता है। पूर्व जो सात प्रकार के वैदिक चिकित्सा लिख आए हैं उनमें मानस चिकित्सा यही सर्वोत्तम चिकित्सा है। वेदने मानस चिकित्सा पर जितना बल दिया है उतना अन्य चिकित्साओं पर नहीं दिया। इसका कारण स्पष्ट है। मानस चिकित्सा में जैसी स्वधीनता होती है वैसी किसी अन्य चिकित्सा में नहीं हो सकती। क्योंकि शरीर की संरक्षा का अधिक भार इसी मन को दिया गया है। इसी कि कर्तव्य च्युत होने से अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है। इसमें किसी बाह्य साधनों की आवश्यकता नहीं होती वेद किसी को परतंत्र रखना नहीं चाहता। मानस चिकित्सा अपने आत्मिक बल से और मनकी इच्छाशक्ति सेही होती है। ऋग्वेद में मंत्र आया है कि "भद्रंनो अपि वातयमान: ऋ० १०।२०। १ = 'हम सब के मनों को कल्याण की ओर प्रेरित करो'। अर्थात् हम सब के अन्दर उत्तम ज्ञान जागृत हो। चिन्ता, उद्वेग आदि से मन निर्बल होता है और मनका निर्बलता के कारण शरीर में व्याधि बढ़ते हैं। वैद्य को चाहिए कि वह 'मानसशास्त्र' का उचित अध्यायन करे और उस ज्ञान के साथ औषधि विज्ञान को मिलाकर रोगीकी चिकित्सा करे। क्योंकि सब रोगों की जड़ मन के दोषों में होती है। मन में जब तक दोष रहेगा तब तक किसी नं किसी रोगकी पीड़ा अवश्य होगी। मानस चिकित्सा का विषय योग साधन माला के पुष्प २, में विशेष रूपसे लिखा गया है। अब इस पुस्तक के अन्तिम विषय को समाप्त करता हूं।

* ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः *

RA 6/